काश्मीर यात्रा

●

लेखक

सन्तोषकुमार एम० ए०
लेक्चरर—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मनोविज्ञान विभाग

●

सम्पादक

विश्वनाथ मुखर्जी

●

प्रकाशक
जय प्रकाशन
२२/११ कबीर चौरा
वाराणसी

प्रथम संस्करण
अगस्त, १६६०

मूल्य : दो रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक
दीपक प्रेस,
१७/२७२ नदेसर,
वाराणसी-कैण्ट

मानस की उस देवी को

जिसकी प्रेरणा से

लिखता चला आ रहा हूँ।

विषय-सूची

कथनिका

मेरे कुछ मित्रों ने जब काश्मीर यात्रा की योजना बनायी और मुझे भी साथ देने के लिए आमंत्रित किया तो मैं शरीर-सम्पत्ति से निर्धन होते हुए भी कविता, केशर और कामिनी के देश के सौन्दर्य-दर्शन का लोभ संवरण नहीं कर सका। यद्यपि महाकवि कल्हण का वह काश्मीर अब नहीं है और न आज वहाँ भिक्षु दिवाकर मित्र का वह आश्रम है, जहाँ हर्षचरित के रचयिता महाकवि बाणभट्ट के शब्दों में बौद्धधर्म में प्रवीण तोते भी वसुबन्धु के अभिधर्मकोश का पाठ करते थे (शुकैरपि शाक्यशासनकुशलै कोशं समुपदिशद्भिः), तथापि प्रकृति के साथ कृति का योग पाकर काश्मीर अब उन दिनों से अधिक सुन्दर बन गया है। कविता का वह युग नहीं है, पर केशर तथा कामिनी के लिए उसका आज भी वही महत्व है।

आधुनिक साधनों ने यात्रा के पुराने आनन्दों को जरूर समाप्त कर दिया है, लेकिन मुझ जैसे शरीर से असमर्थ व्यक्ति ने काश्मीर के दुर्गम स्थानों की यात्रा की, यह आधुनिक साधनों की ही कृपा है। इसी यात्रा का फल है यह पुस्तक, जिसे मैंने बहुत जल्दी में लिखा। मनोविज्ञान विषयक अपनी दूसरी पुस्तक तैयार करने में व्यस्त होने के कारण मुझे इसे दुहराने का भी समय नहीं मिला। मैं श्री विश्वनाथ मुखर्जी का बहुत कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने सारी पाण्डुलिपि पढ़ने और उसका सम्पादन करने की कृपा की। इस पुतक के लिए सच्चे अर्थों में वे ही धन्यवाद के पात्र हैं।

सन्तोष कुमार

काश्मीर यात्रा मार्ग
गुरेज
मानसबल
गुण्ड
अमरनाथ
पंचतरणी
पहलगाँव
मार्तण्ड
अनन्तनाग
वेरीनाग
बनिहाल
रामबन
बटोत
डोडा
भदरवाह
ऊधमपुर
जम्मू
संचेतगढ़
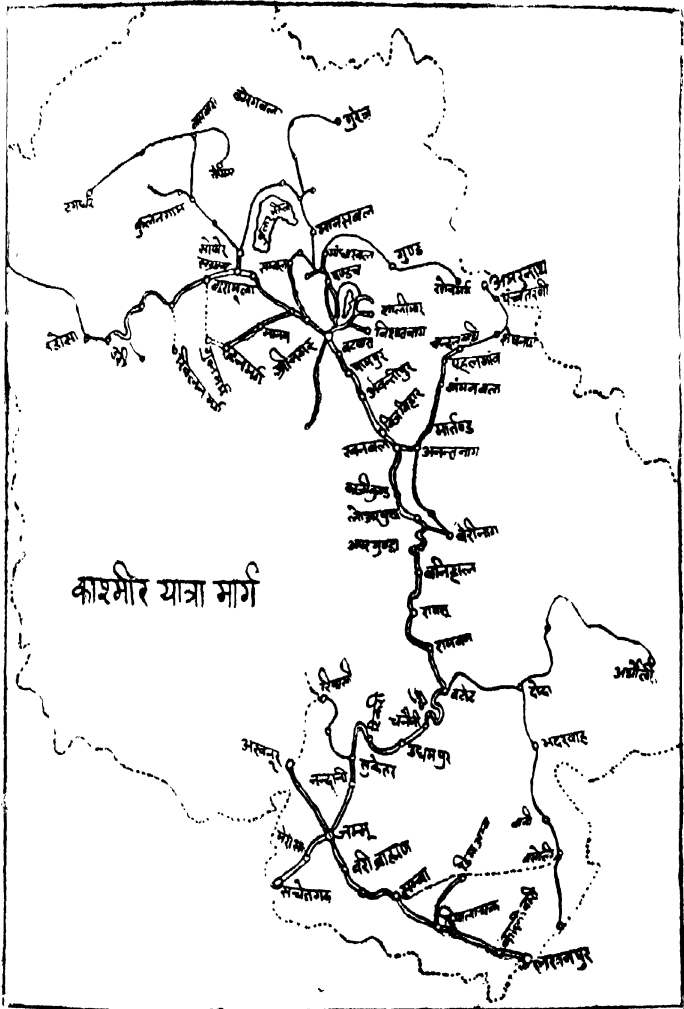
काश्मीर का मानचित्र

मंजिल की ओर

●

इधर एक अर्से से बनारस के बाहर नहीं जा सका था। कई बार यात्रा का प्रोग्राम बना और परिस्थियों ने उसे बिगाड़ दिया। भला हो रेलवे का जो गर्मी के दिनों में पहाड़ी स्थानों के लिए रियायती दर पर यात्रा का प्रबन्ध कर देती है। लोग एक ढेले में दो शिकार करते हैं और यहाँ मैं छुट्टियों का सदुपयोग, बनारस की सड़ी गर्मी से मुक्ति, भारत के स्विट्जरलैण्ड के दर्शन और कुछ दिनों के लिए परेशानियों से छुटकारा, एक साथ कई शिकार करने जा रहा हूँ।

हमारे दल में प्रदीप जी, बनर्जी साहब, मैं और रामदास नौकर कुल चार आदमी थे। १८ अप्रैल को सुबह ६½ बजे हम पंजाब मेल से रवाना हुए और दूसरे दिन ७½ बजे के लगभग जालंधर पहुँच गये। श्रीनगर तक का टिकट लेने के कारण हमें शार्टकट से यात्रा करनी पड़ी। बनारस से जालन्धर की यात्रा में ऐसी कोई खास बात नहीं हुई जिसकी चर्चा की जाय। जालन्धर में पठान कोट जानेवाली गाड़ी प्लेट फार्म पर लगी हुई थी। यह मेल नहीं, पैसेंजर थी। हम लोग उसमें जाकर बैठ गये।

गाड़ी में चढ़ते-उतरते समय अक्सर बमचख मचती है, लेकिन जब लोग अपनी-अपनी जगह पर बैठ जाते हैं—तब बातचीत का सिलसिला यों चालू हो जाता है, मानों हम यात्री नहीं, एक परिवार के सदस्य हैं। पंजाबी, बंगाली, मद्रासी, गुजराती, सिन्धी, महाराष्ट्रीय और उत्तरप्रदेश के हर तरह के नमूने हमारे डिब्बे में मौजूद थे। इनमें अधिकतर अमरनाथ और काश्मीर भ्रमण करनेवाले यात्री थे। आज के राजनीतिज्ञ भले ही राष्ट्रभाषा हिन्दी का विरोध करें पर जब दो विभिन्न भाषा-भाषी आपस में बातचीत करते हैं तब उन्हें मजबूरन हिन्दी का सहारा लेना ही पड़ता है। फर्स्ट और सेकेण्ड क्लास के यात्री अँग्रेजी शिष्टाचार जरूर अपनाते हैं।

बनारस से हम चार व्यक्ति रवाना हुए थे। पठान कोट पहुँचते-पहुँचते अनेक साथी साथ हो गये। उनमें लखनऊ के एक विद्यार्थी को, जिसका नाम हमने इतिहासज्ञ रखा था—हम लोग ने अपने काफिले में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार हम पंच पाण्डव बन गये।

पठानकोट में

एक बजे के लगभग हमारी गाड़ी पठानकोट पहुँची। यहाँ एकबार हमारे टिकटों की जाँच की गयी। इससे छुटकारा पाते ही हम स्टेशन से बाहर निकल आये। पठानकोट उत्तर रेलवे का आखिरी स्टेशन है। हिन्दुस्तान का बटवारा होने के पहले रावलपिण्डी की राह से लोग जम्मू तक रेल से सफर करते थे। बँटवारे की याद आते ही हमारा हृदय दर्द से कराह उठा, पर यह तो परिस्थितियों की बात रही।

स्टेशन के बाहर आकर जो दृश्य हमने देखा, उससे हमने विश्वास कर लिया कि आज की रात शायद पठानकोट में ही काटनी पड़े। चारों तरफ यात्रियों का मेला लगा हुआ था। बस, मोटर और टैक्सी पर लोग टूट पड़ रहे थे। थोड़ी देर बाद भीड़ शान्त हो गयी। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि घबड़ाने की आवश्यकता नहीं हैं, प्रत्येक १०-१५ मिनट के बाद बसें जाती रहती हैं। इस समाचार से हम आश्वस्त हुए। सुबह से अभी तक भोजन की कौन कहे स्नान भी नहीं किया था। लगातार सफर करना अच्छा भी नहीं लगता। हम पेट-पूजा की तैयारी में जुट गये।

भूख जोरों से लगी हुई थी। स्नान-भोजन के पश्चात् हम यात्रा की तैयारी करने लगे। बनर्जी साहब पक्के ब्राह्मण होने के कारण अभी पूजा-पाठ में संलग्न थे ; मैं और इतिहासज्ञ पठानकोट का मुआइना करने की गरज से टहलने निकले।

पठानकोट टेढ़ा-मेढ़ा बसा हुआ एक छोटा सा कस्बा है, जिसे यहाँ की भाषा में शहर कहा जाता है। इनी-गिनी दूकानों के इस बाजार के महत्व

को समझ कर, सरकार कुछ सँवार दे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं कि यह अँचल आकर्षक बन जाय और यात्रियों को यहाँ एकाध दिन ठहरने की भी इच्छा हो।

बाजार से लौटकर आने पर देखा—बनर्जी बाबू हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। हम तुरन्त बस स्टैण्ड की ओर रवाना हो गये। एक बार यहाँ पुनः हमारे टिकटों की जाँच की गयी। इसके बाद हमारी बस काश्मीर की ओर चल पड़ी।

११ मील यात्रा करने के पश्चात् सहसा हमारी बस लखनपुर नामक स्थान पर ठहर गयी। यहीं से काश्मीर की सीमा शुरू होती है। यहाँ सभी यात्रियों के सामानों की तलाशी होती है। अधिकारी तरह-तरह के सवाल पूछते हैं। लगभग एक घण्टा तक हमें यहाँ रुकना पड़ा।

धीरे-धीरे हमारी बस मैदानी इलाके को छोड़कर पहाड़ी इलाके में प्रवेश करने लगी। अब सरपट दौड़ने के बजाय वह नदी की लहरों की भाँति, नीचे-ऊपर अठखेलियाँ करती हुई बढ़ रही थी। कभी-कभी इतने नीचे चली जाती थी कि हमें भय अनुभव होने लगता था; जब हम ऊपर से फिसलती हुई आती बस को देखते तो आश्चर्य से चकित रह जाते थे। जगह-जगह मिट्टी के ढूह बने हुए थे। कभी दोनों किनारे और कभी एक ओर जंगली फूलों का बाग दिखाई दे जाता था। पता नहीं, इन फूलों का भी कोई नाम है; इनमें अपने सौन्दर्य के अनुसार गन्ध है या नहीं।

लखनपुर से चलकर बीच में सम्बा और फिर बड़ी ब्राह्मण दो पड़ाव में कुछ मिनटों के लिए रुककर हमारी बस जम्मू की ओर बढ़ चली। बस में बैठे यात्रियों से ज्ञात हुआ कि ४½ बजे के लगभग हमारी गाड़ी जम्मू

पहुँच जायगी। मेरी यह प्रथम काश्मीर यात्रा थी, इसलिए मन में अपार कौतूहल लिये मैं लगातार बाहर की ओर देख रहा था। रास्ते में दो-तीन यात्रियों को मिचली आयी और पठानकोट में खाया हुआ सारा अन्न काश्मीर में उगल दिया।

जम्मू में

४½ बजे के लगभग हमारी बस जम्मू शहर के बीच में आकर रुक गयी। यहाँ हमें यह बताया गया कि आज आगे बस नहीं जायगी, क्योंकि यहाँ से अगला पड़ाव ४२ मील दूर है, दूसरे यही से चढ़ाई आरंभ होती है। कल सुबह ७ बजे बस यहाँ से रवाना होगी। सब लोग ठीक ७ बजे यहाँ आ जाँय। अन्य यात्रियों के मन की बात तो नहीं जानता, पर इस समाचार से हमें अवश्य प्रसन्नता हुई ; वह इसलिए कि काश्मीर राज्य में श्रीनगर के बाद जम्मू का सर्वाधिक महत्व है। अगर हमारी बस यहाँ विश्राम न करती तो शायद जम्मू को अच्छी तरह देखने का मौका न मिलता। जो लोग सुबह से दोपहर तक के अन्दर पठानकोट से रवाना होते हैं, उन्हें यहाँ केवल घण्टा-सवा घण्टा ठहरने का मौका मिलता है। किसी भी महत्वपूर्ण स्थान को घण्टे भर में अच्छी तरह देखा नहीं जा सकता। जम्मू दर्शनीय शहर नहीं है, पर है तो वह काश्मीर राज्य की शीतकालीन राजधानी।

डाक बङ्गले में स्थान न मिलने के कारण हम एक सरदार साहब के होटल में आये। होटल की हैसियत के अनुसार आठ रुपया प्रति कमरा किराया अधिक था, पर चार पार्टनर की वजह से हम सस्ते में निपट गये। होटल में अड्डा जमाने के बाद यह तय किया गया कि पहले चलकर जम्मू

शहर को अच्छी तरह देख लिया जाय। सुबह मौका मिलेगा नहीं, फिर पता नहीं कब जम्मू-दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हो। इस निश्चय के पश्चात् हम नगर-दर्शन के लिए निकल पड़े।

हमें जम्मू में सबसे पहले जो चीज खटकी, वह थी—यहाँ की गरीबी। यह प्रदेश यद्यपि भारत का ही अङ्ग है और यहाँ हमारे भाई-बन्धु ही रहते है, लेकिन यह क्षेत्र इतना पिछड़ा हुआ है, मुझे यह विश्वास नहीं था! यहाँ प्रति वर्ष लाखों यात्री देश-विदेश से आते हैं, यहाँ का शाल सारे संसार में प्रसिद्ध है, लेकिन बहुमूल्य फूलों (केसर) को उपजाने वाले इतने गरीब हैं—कौन जानता है। कहा जाता है कि सामन्तशासन काल में यहाँ के निवासियों की हालत और भी बदतर थी। इधर बख्शी सरकार ने बहुत कुछ सुधारा और सँवारा है। लेकिन इसके लिए केवल सरकार दोषी नहीं है। यद्यपि प्रकृति ने यहाँ अपनी सारी माया उड़ेल दी है, परन्तु जरूरत के मुताबिक उपज नहीं होती। इसके अलावा यहाँ के निवासी सदियों से अपने पुराने ख्यालातों की वजह से गरीबी से प्यार करते रहे हैं। यह दोष सिर्फ काश्मीरियों में ही नहीं, सम्पूर्ण देश में है।

यहाँ के अधिकांश पुरुष पगड़ी या टोपी पहने नजर आये। बहुत कम ऐसे लोग मिले जिनका सर नङ्गा था। सम्भवतः पहाड़ी प्रदेश होने के कारण ही यहाँ की महिलाएँ ओढ़नी का अधिक प्रयोग करती हैं। महिलाओं की ओढ़नी के सम्बन्ध में एक मजेदार बात ज्ञात हुई। यहाँ की महिलाएँ जो ओढ़नी ओढ़ती हैं, उनमें कोई विशेषता हमें नजर नहीं आयी। पर हिन्दू महिलाएँ अपनी ओढ़नी को 'तरङ्गा' कहती हैं और मुस्लिम महिलाएँ 'कसबा'। अन्तर केवल शब्दों का है, पहनावे का नहीं, हालाँकि

हम उनके पहनावे से यह नहीं भाँप सके कि इनमें कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान। कमीज की तरह वे एक लम्बा चोला भी पहनती हैं जिसे यहाँ के लोग 'फैरन' कहते हैं। मेरे इतिहासज्ञ मित्र ने बताया कि इस पोशाक को जबरन यहाँ की औरतों को पहनाया गया है, इनका सौन्दर्य अप्सराओं को भी मात कर देता है, इसीलिए यहाँ पुरुषों की दृष्टि से बचाने के लिए औरतों को फैरन पहनाते हैं। जो भी हो, पर जादू वह है—जो सर पर चढ़कर बोलता है। प्रकृति की देन छिपाये नहीं छिपती।

जम्मू शहर देखकर हमें बड़ी निराशा हुई। यहाँ आने के पहले इसके बारे में बहुत कुछ सुन रखा था, पर शहर देखकर ऐसा लगा जैसे इसे शहर कहना भी शहर शब्द का मजाक उड़ाना है। आधे वर्ग मील में फैला हुआ अञ्चल, जिसे एक बड़ा कस्बा मान लेना काफी है। कहा जाता है कि जम्मू की यह रौनक आजादी के बाद बढ़ी है। कुछ वर्षों पहले जहाँ स्यापा था, आज वहीं होटल और रेस्तराँ खुल गये हैं। यात्रियों के लगातार आवागमन के कारण जम्मू निवासियों का सितारा बुलन्द हो गया है। काश्मीर राज्य का भारत के सबसे निकटवर्ती स्थान होने के कारण आज वह व्यापारिक केन्द्र बन गया है।

प्राचीनकाल में इसकी क्या हालत थी, कौन जाने। इतिहास के अध्ययन से इतना ही ज्ञात होता है कि जम्बुलोचन नामक किसी राजा ने इस शहर को बसाया था। लेकिन राजा जम्बुलोचन के पूर्व अग्निगर्भ नामक एक बड़े प्रतापी राजा हो चुके हैं जिनका जम्मू पर अधिकार था। वह जम्मू कौन सा राज्य था, पता नहीं। मुमकिन है, आगे चलकर जब राजा जम्बुलोचन के अधिकार में यह प्रदेश आया हो तब उन्होंने इस

स्थान का नाम जम्बू नगर दिया हो, जो बिगड़कर जम्मू बन गया है। राजा अग्निगर्भ सिसोदिया वंश के थे। इनका आदिस्थान राजस्थान था। इससे यह स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में काश्मीर पर राजस्थानियों का अधिकार था। यद्यपि महाकवि कल्हण (कल्याण) ने अपनी राजतरङ्गिणी में जम्मू का उल्लेख नहीं किया है, लेकिन काश्मीर के तमाम राजाओं के और वर्त्तमान स्थानों के नामों का उल्लेख किया है। इससे इतना पता चलता है कि उन दिनों जम्मू का उतना महत्व नहीं था जितना इन दिनों है। समुद्रतल से १००० फुट की ऊँचाई पर यह तवी नदी के किनारे बसा हुआ है। इस नगर के नाम से काश्मीर में एक अलग प्रान्त बन गया है।

भारत में बनारस और मथुरा को मन्दिरों का नगर कहा गया है, ठीक उसी प्रकार काश्मीर में जम्मू को मन्दिरों का शहर कहा जाता है। यद्यपि बनारस या मथुरा से जम्मू की कोई तुलना नहीं हो सकती, परन्तु अपने स्थान पर जम्मू का अपना महत्व है। ले देकर एक ही बाजार है, जहाँ यात्री शहर की रौनक का आनन्द लेते हैं। हर प्रदेश के, हर ढंग और हर प्रकृति के व्यक्ति आपको इस शहर में घूमते दिखाई देंगे। कुछ विदेशी भी चकित दृष्टि से, सावधानी से आगे बढ़ते नजर आते हैं। एक दृश्य जरूर मेरे लिए मनोरञ्जक साबित हुआ। वह यह कि हर होटल में नृत्य-सङ्गीत का अच्छा प्रबन्ध है। इसी बाजार में राजा रणवीर सिंह का बनवाया हुआ एक प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर में राम, सीता और लक्ष्मण की मूर्त्तियाँ हैं। इसके अलावा अन्य दर्जनों देवता भी विराजमान हैं।

रघुनाथ जी का मन्दिर, पुतलीघर और राजमहल के अलावा रघुनाथ

संस्कृत पुस्तकालय, जम्मू में एक विशेष महत्व रखता है। कहा जाता है कि इस पुस्तकालय में संस्कृत की प्राचीन और दुर्लभ पुस्तकों का अपूर्व संग्रह हैं। भारत के संस्कृत के विद्वान एक अर्से तक यहाँ गवेषणा करते रहे। आज भी अक्सर विदेशों से संस्कृत पुस्तकों का अध्ययन करने के लिए विदेशी विद्वान वहाँ आते रहते हैं। कहा जाता है कि सम्वत् १६५४ में जब जम्मू काश्मीर की गद्दी पर राजा रणवीर सिंह बैठे तब उन्होंने काश्मीर के शासन को सुदृढ़ ही नहीं बनाया, बल्कि भारतवर्ष के बड़े-बड़े पण्डितों को बुलवाकर अपने यहाँ दरबारी बनाया, इन विद्वानों से ज्योतिष, चिकित्सा, धर्म और दर्शन आदि पर पुस्तकें लिखवायीं। कहा जाता है कि इस पुस्तकालय में अथर्ववेद की गोपद एवं पिप्पलाद दोंनों शाखाएं थीं। पिप्पलाद शाखा को एक जर्मन पण्डित, महाराज से पुरस्कार के रूप में माँग कर ले गया, जिसका प्रकाशन जर्मन विश्वविद्यालय ने जर्मन भाषा में अनुवाद करवा कर छपवाया है।

जम्मू शहर को अगर काश्मीर का चौराहा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। यहाँ से पठान कोठ, सुचेतगढ़, अखनूर, मानसर श्रीनगर आदि स्थानों की ओर जाने वाली सड़कें गयी हैं। पूंछ धर्मशाला, राजौरी, थान्ना आदि ऐतिहासिक स्थनों की ओर जाने वाली सड़कें यहीं से गयी हैं, यहाँ मुगल बादशाह जहाँगीर और नूरजहाँ तफरीह के लिए आया करती थीं। तीर्थ यात्रियों के लिए जम्मू का बड़ा महत्व है। वैष्णव मन्दिर जाने वाले सभी यात्रियों का यह पड़ाव स्थल है। यद्यपि वैष्णव मन्दिर जाने के लिए जम्मू से आगे श्रीनगर की राह बढ़ने पर, सुकेतर से एक सड़क बायीं ओर मुड़ गयी है जो सीधे कटरा

होते हुए वैष्णव मन्दिर तक जाती है, लेकिन जम्मू से वैष्णव मन्दिर तक के मध्य में कटरा के अलावा अन्य पड़ावों पर विश्राम के योग्य सुविधा पूर्ण स्थान नहीं है।

वैष्णव मन्दिर

यद्यपि हम वैष्णव मन्दिर दर्शन करने नहीं जा सके, परन्तु बनर्जी साहब जो इसके पूर्व तीन बार काश्मीर आ चुके हैं, अपनी पिछली यात्रा में वैष्णव मन्दिर गये थे। उनकी जबानी वैष्णव मन्दिर के सम्बन्ध में जो कुछ जानकारी प्राप्त हो सकी है, उसका उल्लेख कर रहा हूँ। वैष्णव मन्दिर तफरीह के योग्य स्थान होता तो मैं अवश्य जाता, परन्तु मैं पूजन-दर्शन के लिए नहीं, घूमने आया था।

वैष्णव देवी का मन्दिर जम्मू से ४२ मील दूर समुद्र स्तर से ६००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। जम्मू से कटरा तक ३३ मील पक्की सड़क है। यहाँ एक बात याद रखनी होगी कि अमर नाथ मन्दिर का दर्शन लोग श्रावणी के दिन करने जाते हैं और वैष्णव देवी के दर्शनार्थ क्वार में नवरात्र के समय जाते हैं। खासकर कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन यहाँ काफी भीड़ होती है। उन दिनों पठान कोट से जम्मू तथा जम्मू से कटरा तक के बीच स्पेशल बसें चलती हैं।

कटरा से वैष्णव मन्दिर तक का रास्ता केवल दुगर्म ही नहीं, बल्कि इतना कठिन है कि चढ़ाई में लोगों को छठी का दूध याद आ जाता है। यद्यपि तुंगनाथ मन्दिर की तरह इतनी खड़ी चढ़ाई नहीं है, फिर भी उससे कम नहीं है। खासकर जब लोग चरण पादुका से आगे बढ़ते हैं

और बर्फानी हवा की थपेड़ खाते हैं तब सहस्रों कण्ठों से 'रक्षा करो-रक्षा करो—हे देवी' शब्द निकल पड़ता है।

चरण पादुका जम्मू से ३४ मील दूर और कटरा से एक मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर एक देवी का मन्दिर है। चढ़ाई शुरू करने के पहले सभी यात्री अपनी जान की खैरियत मनाने के लिए यहीं देवी के आगे सर झुका लेते हैं। चरण पादुका से आगे आदि कंवारी (आदि कुमारी) देवी का एक मन्दिर है। यह स्थान काफी खुला हुआ है। लेकिन यहाँ ठहरने योग्य स्थान की कमी होने के कारण अधिकांश यात्री वैष्णव मन्दिर से सीधे कटरा चले आते हैं, जो यात्री तुरन्त यात्रा नहीं कर पाते और काफी थक जाते हैं, वे वैष्णव मन्दिर में ही ठहर जाते हैं।

आदि कंवारी से तीन मील आगे पहाड़ की चोटी पर भैरवजी का एक छोटा सा मन्दिर है। आदि कंवारी से कठिन चढ़ाई शुरू होती है। सांझी छत नामक स्थान आते-आते यात्री घबरा उठता है। इसीलिए इस चढ़ाई का नाम 'हाथी मत्था' रखा गया है। यहाँ दोनों ओर इतनी गहरी खाई है कि देखकर गश आ जाता है। भैरव मन्दिर आने पर एक खतरा टल जाता है।

भैरव मन्दिर के बारे में लोगों की यह धारणा है कि वैष्णव मन्दिर दर्शन करने के बाद ही भैरव का दर्शन करना चाहिए, उसके पहले नहीं। यही वजह है कि अधिकांश यात्री दर्शन करने को कौन कहे सर भी नहीं झुकाते।

भैरव मन्दिर के आगे का रास्ता ढलुआ है। इस रास्ते के दोनों ओर

देवदारू-चिनार और अन्य वृक्षों की घनी छाया है। यात्री यहाँ विश्राम करते हुए धीरे-धीरे वैष्णव मन्दिर पहुँचते हैं।

वैष्णव मन्दिर ३० फुट लम्बी एक संकरी गुफा में बना हुआ है। यहाँ यात्रियों को झुककर और कहीं-कहीं हाथ-पैर के बल रेंगकर भीतर जाना पड़ता है। गुफा के द्वार पर एक बड़ा पत्थर है जिसे भैरव योगी का धड़ कहा जाता है। गुफा के भीतर सोते की भाँति जलधारा बहती रहती है, जिसके ऊपर से लोगों को गुजरना पड़ता है। देवी की वेदी पर लक्ष्मी, सरस्वती और काली देवी के चिन्ह हैं। मध्य के एक चिन्ह को देवी की पाषाण मूर्त्ति माना जाता है। मतलब यह कि इतनी दूर यात्रा करने के बाद भी यह स्पष्ट नहीं होता कि इतना कष्ट कर आने पर हम किस गोरख धन्धे में फँस गये, सिवाय इसके कि जो कुछ पण्डा बताये उसे चुपचाप मान लें। वेदी के नीचे से जलधारा बहती है, जिसे देवी का चरणामृत समझकर लोग पीते हैं।

गुफा में इन देवी-देवताओं के अलावा पंच पाण्डव, प्रह्लाद तथा शिव जी के स्तम्भ है। महाभारत के वनपर्व में पाण्डवों के वृषपर्वाश्रम जाने जाने का उल्लेख है। सम्भवतः उसी की स्मृति में यहाँ इसका भी स्तम्भ मौजूद है।

काश्मीर का सौन्दर्य

रात को हमने प्रेम से भोजन किया और 'जनम-जमन के फेरे' फिल्म देखी, फिर आकर ऐसा सोये कि दूसरे दिन सुबह नींद खुली। देर काफी हो चुकी थी। किसी प्रकार से स्नान जलपान कर हम तैयार हो गये।

पता नहीं, आगे कहाँ जलपान-भोजन की व्यवस्था हो, इसलिए खूब नाश्ता कर लिया गया। अफसोस सिर्फ इस बात का रहा कि आज बनर्जी बाबू को बिना गायत्री पाठ किये, जलपान की गोष्ठी में सम्मिलित होना पड़ा।

ठीक सवा सात बजे हमारी बस जम्मू से रवाना हो गयी। शहर से कुछ दूर आगे बढ़ने पर अच्छी खासी चढ़ाई शुरू हो गयी। पहाड़ों की यात्रा में जब तक ढाल पर समतल भूमि पर मोटर चलती है, आराम मिलता है और इन्जन का कर्ण कटु स्वर मस्तिष्क को परेशान नहीं करता, लेकिन चढ़ाई पर असीम शक्ति व्यय करने के कारण बस कम्बख्त इतना परेशान करती है कि आपस में बात-चीत करना भी मुहाल हो उठता है। इधर अगर चुपचाप बैठे बाहर का दृश्य देखिये तो कभी-कभी ऐसा भय अनुभव होता है कि कहीं गाड़ी का ब्रेक फेल हो गया तो यह शव भी रूप कुण्ड के शवों की भाँति, भविष्य के इतिहासकारों के लिए सर दर्द बन जायगा।

पहले कुछ दूर तक अनाकर्ष दृश्य नजर आये, उसके बाद चारों तरफ हरियाली ही हरियाली नजर आने लगी। हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये त्यों-त्यों काश्मीर की भूमि नील वस्त्र धारण किये हमारे स्वागत के लिए आतुर दिखाई देने लगी। इतने रंग-विरंगे फूल और पौधे नजर आये, जिनके नाम जानने को कौन कहे हमने देखा भी नहीं था। पता नहीं, इन फूलों के क्या नाम हैं और कैसे यहाँ अपने आप उत्पन्न हो गये। एक ओर आसमान को छूने वाली चोटियाँ नजर आ रही थीं तो दूसरी ओर अतल खाई, जिसे देखकर भय से बरबस आँखें मुँद जाती थीं। ऊँचे बहुत ऊँचे चढ़ने पर ऊपर और नीचे का जो दृश्य आँखों की राह देखने में आता है,

*वह भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। जम्मू तक देखे गये दृश्यों में ऐसी कोई नवीनता नहीं थी, जिसके लिए यात्री का हृदय काश्मीर दर्शन के लिए व्याकुल हो। ऐसे दृश्य भारत के किसी भी पहाड़ी स्थल में अना-*यास देखने को मिल जाते हैं। लेकिन चक्करदार रास्तों से पहाड़ों पर यात्रा करने का जो आनन्द हमें यहाँ मिला, वह न तो पंचमढ़ी में मिला और न मसूरी यात्रा में ही। शायद इसी खूबी के कारण काश्मीर भारत का स्विट्जर-लैण्ड माना गया है।

ऊधमपुर

जम्मू से ४२ मील दूर ऊधमपुर पहुँचते ही यात्रियों के दल बस से इस तरह निकले जैसे दरबे से कबूतर निकलते हैं। यह स्थान समुद्र तल से २३४८ फुट की ऊँचाई पर स्थित है। जम्मू प्रान्त का यह प्रमुख और रियासत का सबसे बड़ा जिला है। शिखर पर स्थित होने के कारण इसका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है। सच पूछिये तो ऊधमपुर से ही काश्मीर का वास्तविक सौन्दर्य आँखों के सम्मुख तैरता नजर आता है।

यहाँ एक बड़ा बाजार है, यहाँ खाने-पीने की सुविधा है। प्रेम पत्र भेजने के लिए पोस्ट आफिस, इलाज के लिए अस्पताल और रात गुजारने के लिए फर्स्ट क्लास का डाक बँगला है। जो यात्री शाम को यहाँ पहुँचते हैं, उन्हें यहाँ किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होती। ऊधमपुर से ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते गये त्यों-त्यों सघन वृक्ष, झरने और छोटी-छोटी नदियाँ दिखाई देने लगीं। चारों तरफ पक्षी चहचहा रहे थे। कभी-कभी ऊपर से आने वाली बसें हमारा ध्यान बटा लेती थीं, वर्ना हम प्रकृति के

काश्मीर
के
डोंगरा
बालक
पृ० सं० ३२

इन्द्रजाल में इस प्रकार खो गये थे—जैसे हम स्वयं प्रकृतिमय होकर अपने आप को भूल गये हों। दूर बहुत दूर, से ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ मौन स्वर में हमें अपनी ओर इशारे से बुला रही थीं। फूलों की बहार के बारे में कुछ न कहना ही पर्याप्त है। कुछ फूलों के बारे में हमें बताया गया कि ये फूल काश्मीर के अलावा तिब्बत में ही प्राप्त होते हैं। मुझे उन लोगों के सौभाग्य पर इर्ष्या हुई जो वनश्री की इस सौन्दर्य नगरी में अकेले आनन्द उठाते हैं। अकेले का मेरा मलतब यह है कि बीच-बीच में कुछ झोपड़ियाँ दिखाई दे जाती थीं, परन्तु न तो वे गाँव थे और न कसबे। उनके कुछ दूर पर भी कोई मकान नहीं था। केवल अकेला मकान खड़ा था। शहर के कोलाहल से दूर सिर्फ अपने परिवार को लेकर इस सुनसान मैदान में बसने वाले काश्मीरी अवश्य हम शहरियों के लिए ईर्ष्या के पात्र हैं। सम्भवतः इसीलिए प्राचीन काल में संस्कृत भाषा के महान कवि इस भू भाग से प्रेरणा लेकर हमें अपनी अमर कृति दे गये। जब सम्पूर्ण भारत में प्राकृत और पाली का अभ्युदय हो रहा था, तब काशी और काश्मीर सनातन संस्कृति की रक्षा के लिए प्राणपण से प्रयत्न कर रहे थे। उस सनातन वाणी की रक्षा इन दोनों नगरों ने ही की है।

भल्लट, प्रवरसेन, उद्भट, दामोदर गुप्त, कल्लट, जल्हण, उब्बट, छविल्ला, पदम मिहिर, हेलाराज, मम्मट, कल्हण और विल्हण आदि महाकवियों को जन्म देनेवाली बसुन्धरा आज अतीत के गौरव से गौरवान्वित है। भारत का इतिहास इनकी रचनाओं का उतना ही ऋणी है, जितना संस्कृत भाषा अपने अपूर्व भण्डार के कारण समृद्ध है। अगर इनकी

रचनाएं न होतीं तो भारतीय इतिहास और संस्कृति का ज्ञान अधूरा रह जाता।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर चनैनी नामक स्थान मिला। यहाँ से काफी चक्करदार सड़कों से घूमती हुई हमारी बस आगे बढ़ने लगी। पिछली सीट पर रामदास बैठा हुआ था। पठानकोट से यहाँ आने तक वह दो बार उलटी कर चुका था। हालत चिन्ताजनक तो नहीं थी, पर काफी सुस्त पड़ गया था। बनर्जी साहब ने झटपट अपने अटैची से होमियोपैथिक चार गोलियाँ निकाल कर उसे खिला दीं। फिर हम अपनी-अपनी जगह पर आ बैठे।

कुड नामक स्थान पर जब हम पहुँचे, उस समय इतनी शीतलता अनुभव हुई कि हम पुनः बस से बाहर आकर टहलने लगे। ऊधमपुर से २४ मील और जम्मू से ६६ मील दूर यह स्थान है। अभी हमें लगभग १५० मील सफर करना है। यहाँ भी एक सरकारी डाक बंगला, पोस्ट आफिस, अस्पताल और एक छोटा सा बाजार है। चारों तरफ बसन्ती बहार दिखाई दे रही थी। बहुत से लोग गर्मी के दिनों में यहाँ खेमे गाड़कर इस दृश्य का आनन्द लेते हैं। आस-पास कुछ बस्तियाँ भी हैं। कुड का और चाहे जो महत्व हो, पर उसका एक ऐतिहासिक महत्व भी है। यही वह स्थान है, जहाँ शेरे काश्मीर (शेख अब्दुल्ला) नजर बन्द किये गये थे।

कुड से आगे बढ़ने पर देवदार और चीड़ के जंगल मिलते हैं। सड़क के किनारे वे सर ऊँचा किये ऐसे खड़े थे, जैसे काश्मीर आने वाले यात्रियों को 'गार्ड आफ अनार' दे रहे हों और दूर पहाड़ियों की ढाल पर तो ऐसा लग रहा था जैसे वे नीचे का दृश्य देखने के लिए उचक रहे हों। उसके ऊपर

गिरिराज वर्फ की सफेद पगड़ी पहने सूर्य की रोशनी में आइना की तरह चमक रहे थे

बटोट

कुड से १२ मील और जम्मू से ७८ मील बटोट नामक स्थान है। पठानकोट से सबेरे रवाना होनेवाले अधिकांश यात्री पहली रात यहीं बिताते हैं। ऊधमपुर और कुड से भी यह स्थान अधिक रमणीय है। यहाँ यक्ष्मा-पीड़ित रोगियों के लिए एक अस्पताल भी है। इससे समझा जा सकता है कि यहाँ की जलवायु कितनी अच्छी है। ऊँचे-ऊँचे वृक्ष अधिकतर लताओं से आच्छादित हैं। कुड से अधिक खेमे यहाँ देखने में आये। यहाँ भी एक सरकारी डाक-बंगला, अस्पताल और पोस्ट आफिस है। समुद्रतल से यह स्थान ५११६ फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ है।

अधिकांश यात्री यहाँ उतरकर चाय-जलपान और भोजन करने के लिए चल पड़े। बसवाले से पूछने पर पता चला कि अब आगे उतराई मिलेगी। जिन लोगों को भोजनादि करना हो, कर लें। अब यहाँ से रवाना होकर श्रीनगर में ही भोजन करने का मौका मिलेगा। इस समाचार को सुनकर जो लोग बस में बैठे रहे, वे भी निकल आये।

भोजनादि से निवृत होकर, हमारी बस पुनः आगे बढ़ी। पेट पूजा कर लेने तथा उतराई के कारण लोग शीतल हवा में झूलने लगे। बटोट से १६ मिल दूर आने पर रामबन नामक स्थान पर पहुँचे। पास ही हर-हर करती हुई चिनाव नदी बह रही थी। नदी के दोनों ओर बस्तियाँ थीं। यहाँ एक सुन्दर झरना है।

रामबन से आगे बढ़ने पर हमने चिनाव नदी का पुल पार किया। अब तक केवल पेड़-पौधे और हरियाली का ही साथ रहा, लेकिन अब हमारे साथ चिनाव नदी भी चलने लगी। कभी वह हमारे बिलकुल पास आ जाती और कभी मीलों दूर हो जाती। कभी-कभी तो बिलकुल गायब हो जाती थी। रह जाता था—केवल उसका मीठा निनाद। नदी किनारे बैठकर प्रकृति का संगीत सुनने का जो आनन्द मिलता है, क्या वह भाषा द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ? एक ओर जहाँ बस के इंजन के घर-घर शब्द ने हमारे मस्तिष्क को आच्छन्न कर रखा था, वहीं चिनाव के कल-कल निनाद ने हमें आत्म विभोर कर दिया।

पुल पार करने के बाद से ही पुनः चढ़ाई शुरू हो गयी। चक्करदार सड़कों पर अठखेलियाँ करती हुई हमारी गाड़ी इस तेजी से चलने लगी कि भय लगने लगा। सामने, बिलकुल सामने, एक बड़ा सा पर्वत दिखाई देता और यह अनुभव होता कि बस अब आगे कहाँ जायगी। ठीक इसके क्षणभर बाद दूसरा मोड़ दिखाई देता। कभी-कभी राह इतनी संकरी हो जाती थी कि भय लगता था कहीं सामने कोई बस आये तो क्या होगा अथवा ऊपर से आने वाली गाड़ी तेजी से आकर टकरा जाय तब क्या होगा। लेकिन यह अपने मन की कल्पना ही रही। जब भी ऐसा मौका आया, दोनों के हार्न एक दूसरे को अपने आगमन की सूचना देते रहे। दूर नीचे सांप की तरह बल-खाती हुई सड़कों पर जो बसें चल रही थीं, ऐसा लगता था, मानों बच्चों की स्प्रिंगवाली मोटर गाड़ी चल रही है। पहले-पहले जब बस मोड़ पर तेजी से घूमती थी तब हर यात्री अपने बगल वाले व्यक्ति से टकरा जाता था और बरबस क्षमा याचना के शब्द मुंह से निकल पड़ते थे। आगे यह

क्षमा-याचना मुस्कराहट के रूप में बदली और जब हम इसके आदी हो गये तब इस पर ध्यान देना भी छोड़ दिया।

रामबन के आगे राम सू नामक एक साधारण गाँव मिला। यहाँ के दृश्य में कोई नवीनता नहीं थी, बल्कि यों कहना चाहिए कि यहाँ प्रकृति म्लान हो गयी थी। केवल पहाड़ गुफा और कन्दराओं के दर्शन हुए। यहाँ से पुनः चढ़ाई पर बस चढ़ने लगी।

बनिहाल सुरङ्ग

राम सू से १२ मील आगे आने पर हम काश्मीर के सबसे प्रसिद्ध स्थान बनिहाल घाटी पहुँच गये। यह वह घाटी है जो काश्मीर और जम्मू की सीमा को एक में मिलाती है। ज्यों-ज्यों बस ऊपर चढ़ती गयी त्यों-त्यों सर्दी बढ़ती गयी। कुछ लोगों ने बदन पर शाल ओढ़ ली। इस घाटी से जिधर देखिये उधर ही प्रकृति सोलह शृङ्गार किये नृत्य-सी करती दिखाई देती है। पश्चिम के यात्रियों को, पहलगाँव और गुलमर्ग से यह स्थान अधिक प्रिय है। यहाँ एक साधारण बस्ती, पोस्ट आफिस, डाक बंगला और अस्पताल है। एक बात यहाँ बता देना आवश्यक समझता हूँ कि जम्मू से इधर की जो सड़क बनी है, वह नैनीताल, मसूरी, दार्जिलिंग और शिमला की सड़कों से बहुत अच्छी है। इस सड़क के निर्माण में निस्सन्देह इञ्जीनियरों ने अपनी कला का पूर्ण परिचय दिया है वर्ना पहाड़ियों पर बनी सड़कों से यात्रा में जो दुर्गति होती है, उसे भुक्तभोगी ही जानते हैं। पचमढ़ी और देवप्रयाग की यात्रा में हल्दी-चूने का भी प्रयोग करने की नौबत आ जाती है। पठानकोट से श्रीनगर तक की सफर में सबसे ऊँचा स्थान

बनिहाल दर्रा है। बनिहाल में ठहरने, भोजन करने और घूमने-फिरने लायक अच्छा स्थान है। जब मनुष्य धीरे-धीरे बहुत ऊँचाई पर चढ़ जाता है तब उसके हृदय की जो स्थिति होती है तथा वह जो सुख अनुभव करता है, इस समय हम ठीक वैसा ही अनुभव कर रहे थे। कहा जाता है कि 'वाणशाला' गाँव के नाम पर ही इस दर्रे का नाम बनिहाल पड़ा है।

एक माने में हम बहुत सौभाग्यशाली रहे कि जवाहर सुरङ्ग से गुजरे। दूसरी ओर मायूस इसलिए हुए कि संसार की सबसे ऊँची सड़क पर अब हमें जाने का मौका नहीं मिला। अभी दो साल पूर्व तक काश्मीर आने-वाले यात्री ८६८५ फुट की ऊँचाई को पार करते हुए श्रीनगर रवाना होते थे और अब जो लोग आयेगें उन्हें जवाहर सुरङ्ग के भीतर से जाना पड़ेगा। अब वे ५८८० फुट की ऊँचाई से ही गुजरेगें। इस सुरङ्ग के निर्माण से काश्मीर भारत के नजदीक ही नहीं आया, बल्कि उन लाखों काश्मीरियों के लिए भी सुविधा हो गयी जिनका हमेशा भारत से वास्ता पड़ता रहता है। इससे यात्रियों के समय की बचत हो गयी है। यह स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिए कि काश्मीर सरकार ने इधर भारत की सहा-यता से काफी तरक्की की है और जनता की माली हालत को सुधारा भी है। चार वर्ष पूर्व जब बनर्जी बाबू काश्मीर आये थे, तब से अब तक काश्मीर में अनेक परिवर्तन हो गये हैं। खासकर यात्रियों को इतनी सुविधा दी जाती है कि एक बार वापस जाकर वह यहाँ पुनः आने की इच्छा रखते हैं।

पीर पंचाल

सुरङ्ग से बाहर आने पर आगे उतराई मिली और बस का इञ्जन बन्द

हो गया। अब हम जम्मू प्रान्त को पार कर काश्मीर प्रान्त की सरहद में प्रवेश करने लगे। इस पर्वत के आगे काश्मीर की मनोरम घाटी के दर्शन होंगे।

अचानक बनर्जी बाबू ने कहा—"तुम लोग आधुनिक युग के लड़के हो, धर्म-कर्म पर तुम लोगों का विश्वास नहीं रहा। अब तो साम्यवादी प्रभाव इतना बढ़ता जा रहा है कि देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा तो क्या विश्वास भी नहीं रहा। अगर यही स्थिति रही तो एक दिन हमारी प्राचीन संस्कृति, हमारा आर्य धर्म और भारतीयता सब कुछ विनष्ट हो जायगी। केवल कुछ ही लोग प्राचीन संस्कृति पर विश्वास करते हैं और उन पर आस्था रखते हैं। ऐसे लोगों में मैं भी एक हूँ। अपने साथ एक इतिहास का भी छात्र है। क्या तुममें से कोई यह बता सकता है कि इस वक्त हम किस स्थान से गुजर रहे हैं? इतिहास या धार्मिक पुस्तकों में इस स्थान का क्या महत्व है?"

बनर्जी साहब के इस वक्तव्य का क्या अर्थ है, मैं समझ नहीं सका। अचानक बैठे-बैठाये उन्हें यह क्या सूझ गया? मेरा इतिहास-ज्ञान और रुचि भी सीमित है, इसलिए मैं अवाक होकर प्रदीप जी की ओर कभी इतिहासज्ञ की ओर देखने लगा। जब इन दोनों को भी अपनी तरह अवाक होते देखा तो कह उठा—"आप यह सवाल किससे पूछ रहे हैं, यह तो मैं नहीं जानता, अगर बस में बैठे सभी से प्रश्न कर रहे...?"

बीच ही में नाराज होकर बनर्जी ने कहा—'बेवकूफ बनाने की कोशिश मत करो। मैं तुमसे, वर्मा से और इस बालक से ही पूछ रहा हूँ। बाकी लोगों से मेरा परिचय ही क्या है।'

इसके बाद कथा वाचकों की तरह मुद्रा बनाकर उन्होंने कहना शुरू किया—'अभी-अभी हम जिस दर्रे को पार करके आये हैं, उसका आधुनिक नाम पीर पंचाल है और यह पर्वत काश्मीर के लिए दीवार का काम करता है। इसका फैलाव आगे काफी दूर तक है। इस समय तो दिखाई नहीं दे रही हैं, मुमकिन आगे दिखाई दें तब मैं आप लोगों को तीन पहाड़ियाँ दिखाऊँगा। पुराण आप लोग भले ही न पढ़े हों, पर इतना तो जानते ही होंगे कि एकबार प्रलय हुआ था। उन दिनों भगवान् विष्णु ने मत्स्यावतार लेकर प्रजापति कश्यप की नाव को यहाँ के शिखर से बाँधा था। उस शिखर को नौबन्धन कहते हैं। कहा जाता है कि देवी दुर्गा ने मानव जाति को नष्ट होने से बचाने के लिए अपने को पर्वत बना लिया था।

अचानक तभी चीखते हुए बनर्जी साहब ने कहा—'वह देखो, वह जो पहाड़ दिखाई दे रहा है न, ऊँचे-ऊँचे तीन गुम्बद से दिखाई दे रहे हैं—'वही ब्रह्म शिखर है।'

'वह तो 'ब्रम सकल' है, बाबूजी।' पास ही बैठे एक काश्मीरी ने कहा।

'क्या कहा।' बनर्जी साहब चीख उठे।

बेचारा सिटपिटा गया।

इतिहासज्ञ ने कहा—'आप बेकार उस पर नाराज हो रहे हैं। अपनी भाषा में वह आपका समर्थन कर रहा है। ब्रह्म शिखर और ब्रम सकल में क्या अन्तर है ? खैर, अब आप आगे कहिये।'

प्रसन्नता से विभोर होते हुए बनर्जी साहब उस काश्मीरी मित्र के पास आये और गदगद भाव से उसके दोनों हाथों को अपने हाथ में लेकर बोले—

"माफ करना भाई। मैं नाराज नहीं हुआ, बल्कि तुमने क्या कहा उसी को सुनना चाहता था।"

काश्मीरी वृद्ध मुस्करा उठा। फिर बनर्जी ने कहना शुरू किया—'कहा जाता है कि ये तीनों शिखर ब्रह्मा-विष्णु और महेश के प्रतीक हैं। जलोद्भव से यहीं संघर्ष हुआ था। इनमें जो अन्तिम चोटी है, वही नौ बन्धन चोटी है। इसी शिखर के उत्तर-पश्चिम ओर दो मील लम्बी एक पहाड़ी झील है। इस झील को आजकल कौंसर नाग कहते हैं। प्राचीन काल में क्रमसर कहा जाता था। मुझे अच्छी तरह याद है—मैंने कहीं पढ़ा है कि नौ बन्धन और क्रमसर का जिक्र वेदों में किया गया है।'

कौंसर नाग का नाम सुनते ही इतिहासज्ञ चौंके। कहा—कौंसर नाग तो दर्शनीय स्थान है। इसका अर्थ यह हुआ कि हम वहाँ जा सकते हैं ?

'हाँ, हाँ।' बनर्जी ने कहा—'पहल गाँव जाते समय अनन्त नाग से एक रास्ता दक्षिण की ओर गया है, वह कौंसर नाग के आगे तक चला गया है। श्रीनगर से वापस आते समय हम वहाँ चलेगें।'

इस समाचार से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि कम से कम अपने साथ एक ऐसा व्यक्ति है जिसे काश्मीर के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान है। अब तक हम इन्हें पोंगा समझते रहे।

रास्ते में अपर मुण्डा नामक स्थान मिला। उसके आगे लोअर मुण्डा नामक स्थान मिला। यहाँ से एक सड़क सीधे वेरी नाग तक चली गयी है। वेरी नाग की चर्चा आगे करूँगा। यहाँ इतना बता देना आवश्यक समझता हूँ कि वेरी नाग से ही झेलम नदी की उत्पत्ति हुई है।

यहाँ से आगे बढ़ने पर हमें काश्मीर की लम्बी-चौड़ी घाटी के दर्शन

हुए। बनिहाल से ३६ मील दूर आने पर हम काजीकुण्ड नामक स्थान पर पहुँचे। यह कस्बा समुद्र तल से ५२३६ फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ एक छोटा सा डाक बंगला और पोस्ट-आफिस है। काजीकुण्ड से ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते गये त्यों-त्यों पहाड़ी सीमा दूर होती गयी। चारों तरफ खेत और फूलों के पौधे दिखाई देने लगे। मैदानी इलाके में आ जाने के कारण बस को जवानी आ गयी थी। पहले की अपेक्षा उसकी गति अधिक तीव्र हो गयी थी। अब तक हम पहाड़ों पर से काश्मीर का सौन्दर्य देख रहे थे। उनमें विभिन्नता होते हुए भी हमें उतनी प्रसन्नता नहीं हुई जितना मैदानी इलाके में आ जाने के कारण हुई। पंक्तिवार चोड़ के वृक्षों के से बस सर-सर कर आगे फिसलती जा रही थी। अब हम आपस में न तो टकरा रहे थे और न क्षमा माँग रहे थे। बगल में ही झेलम नदी हर-हर करती हुई हमारी बस से रेस कर रही थी। कहीं संकरी तो कहीं चौड़ी। कभी-कभी दूर चली जाती तो कभी बिलकुल पास आ जाती। चढ़ाई-उतराई और चक्करदार सड़कों से बराबर यात्रा करने के कारण मेरा सर चकराने लगा था। चाय पीने की बड़ी इच्छा हो रही थी। इधर दिन ढल चुका था। भय लग रहा था कि बस कहीं शाम के पहले श्रीनगर न पहुँचो तो इस बियाबान में कहाँ डेरा जमाना पड़ेगा।

खनबल

काजीकुण्ड से ५-६ मील दूर आगे आने पर हम खनबल नामक स्थान पर आकर रुक गये। सभी यात्री यहाँ उतर कर चाय-जलपान करने लगे। सिर्फ यात्री ही नहीं, बल्कि हमारा यान भी जलपान करने लगा। खनबल काश्मीर

प्रान्त का प्रसिद्ध चोराहा है। यहाँ से पहल गाँव, अनन्त नाग, वेरीनाग, जम्मू, श्री नगर आदि स्थानों को सड़कें जाती हैं। यहाँ एक डाक बंगला, काश्मीर नरेश का एक बंगला और एक बाजार है। यहीं झेलम नदी में स्थिरता आ जाती है। यही वजह है कि कुछ शौकीन लोग यहाँ से नाव द्वारा श्री नगर पहुँचते हैं। यहाँ से नाव द्वारा श्रीनगर जाना या हाउस वोट में टिकना मेरे जैसे व्यक्तियों के बस की बात नहीं है। यह कार्य सिर्फ बड़े आदमी अथवा जिनके बाप काफी रकम छोड़कर मरे हो, वही कर सकते हैं। यहाँ से झेलम में नाव चलने लगती है जो बारामूला तक चलती है। यहीं लिदर तथा अन्य सहायक नदियाँ झेलम से मिलती हैं।

जो भूल न सकूँगा

काश्मीर जाने वाले यात्रियों को बहुत सी बातें नहीं भूलतीं। कुछ लोग पहल गाँव को याद करते हैं तो कुछ लोग डल और बुलर झील। कुछ लोग निशात बाग और चश्माशाही की प्रशंसा करते हैं तो कुछ लोग गुलमर्ग और खिलनमर्ग की। लेकिन मुझे काश्मीर का सबसे अधिक आकर्षण स्थल अगर कोई लगा तो केवल एक लम्बी सड़क। खनबल से श्रीनगर तक जाने वाली सकड़ की तुलना क्या भारत के किसी भी नगर से की जा सकती है? इस सड़क के सौन्दर्य को देखकर हृदय इतना प्रफुल्लित हो उठा कि अगर इसके पूर्व मैं काश्मीर आया होता तो यहाँ से पैदल ही श्रीनगर जाता। सचमुच वे लोग बड़े भाग्यशाली है जो झेलम नदी के सहारे नाव द्वारा यहाँ से श्रीनगर तक की यात्रा करते हैं।

इस सड़क के दोनों ओर आसमान से बातें करते हुए ऊँचे-ऊँचे वृक्ष,

जिन पर बैठे पक्षी एक स्वर से इस तरह गीत गा रहे थे, मानों हम घर पर बैठे रेडियो से 'जल तरंग' का आनन्द ले रहे हैं। और इस संगीत को झेलम अपने मीठे संगीत से और भी मादक बना दे रही थी। काशी में बहुत से रईस सारनाथ आदि क्षेत्रों में अर्थात् शहर के कोलाहल से दूर एक बंगला बनवाते हैं ताकि बरसात के मौसम में जाकर वहाँ पिकनिक करें, आनन्द मनायें और कुछ देर के लिए गृहस्थी के किचकिच से मुक्ति ले जीवन का आनन्द उठायें। अगर ऐसा ही स्थान बनारस में होता तो कितना आनन्द आता।

एक सफेद सड़क जिसके दोनों ओर सफेद तने वाले वृक्ष और उसके नीचे मीलों तक लहलहाते खेत, आपस में मस्ती से थिरक रहे थे, नाच रहे थे और गा रहे थे। उनके इस संगीत का आनन्द केवल दूर खड़े पहाड़ ही लेते हैं। पहड़ों पर लोग स्वास्थ्य की समृद्धि के लिए आते हैं और ये पर्वत दिन-रात प्रकृति का आनन्द लेते-लेते इतने मोटे हो गये हैं कि अपने अङ्ग से हजारों नहीं करोड़ों टन टुकड़ों को निकालकर पृथ्वी पर बिछाते रहते है, फिर भी पृथ्वी मोटी नहीं हुई।

अवन्तीपुर

खनबल से १४ मील आगे आने कर इतिहास प्रसिद्ध स्थान अवन्तीपुर मिला। समुद्र तल से इसकी ऊँचाई ५२२५ फुट है। प्राचीन काल में यह स्थान काश्मीर राज्य की राजधानी थी। कहा जाता है कि राजा अवन्ति वर्मन ने ९वीं शताब्दी में इस नगर को बसाया था। उसने यहाँ दो मन्दिर भी बनवाये थे, जिनके अवशेष सड़क के किनारे देखने में आये। प्राचीन

काल में राजाओं को एक बीमारी थी। वह यह कि अपने नाम पर मन्दिर और नगर बसाया करते थे। महाकवि कल्हण के राजतंरिगिणी के अध्ययन से इस सत्य की पुष्टि हो जाती है। काश्मीर में जितने भी राजा हुए उनमें अधिकतर राजाओं ने अपने नाम पर नगर बसाया और मन्दिर भी बनवाये। शायद इसीलिए हिन्दुओं के देवी-देवताओं की संख्या ३३ करोड़ है।

पाम्पुर

कुछ दूर आगे बढ़ने पर कुछ खाली खेत नजर आये। बाद में पता लगा कि यही वह भूमि है जिसके लिए काश्मीर सारे संसार में प्रसिद्ध है। पाम्पुर के क्षेत्र में ही केसर की खेती होती है। कहा जाता है कि इस स्थान का प्राचीन नाम पद्मापुर था। काश्मीर का नाम केसर से सम्बन्धित है। कहा जाता है कि काश्मीर का (जो संस्कृत शब्द है) भाषार्थ है—केसर। यह बात अपने आप में कहाँ तक ठीक है, इसका निर्णय संस्कृत भाषा के पण्डित ही कर सकते हैं। खैर, चाहे जो हो, अगर काश्मीर को भारत का स्विट्जरलैण्ड होने का गौरव प्राप्त है तो उस गौरव को केसर का सौरभ और भी महत्वपूर्ण बना देने में सहायक हुआ है।

पाम्पुर से हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं त्यों-त्यों शहरी जीवन के विभिन्न दृश्य हमारे आँखों के सम्मुख एक के बाद एक आने लगते हैं। कारों पर बैठे विदेशी अतिथि, बसों के भोंपू, ताँगों में जुते हुए घोड़ों की पगध्वनि, आँखों में अपार कौतूहल लिए काश्मीरी बालक और पुरुष, चलते-फिरते और ध्वनि करते दिखाई देने लगते हैं। महिलाओं के मैले-कुचैले कपड़ों से उनका

निरखता हुआ रूप सहसा ऐसा चौंका देता है जैसे हम काश्मीर में नहीं, बल्कि योरोप के किसी ठण्डे मुल्क में सैर करने आये हैं। पता नहीं काश्मीरी महिलाओं को अपने रूप का गर्व है या नहीं, लेकिन यही रूप हिन्दुस्तान के किसी भी प्रदेश में अगर किसी महिला को ईश्वर की कृपा से प्राप्त हो जाय तो शायद उसके पैर धरती पर ठीक से न पड़े।

धीरे-धीरे हम श्रीनगर की सीमा में आ गये। किसी भी नगरी की सीमा वहीं से शुरू हो जाती है जहाँ यमदूत की भाँति चुङ्गी अधिकारी बैठे रहते हैं। लेकिन इस चुङ्गी घर के नाम से ही हमें काफी प्रसन्नता हुई और यह समझते देर नहीं लगी कि काश्मीरी जनता कितनी कला प्रिय है। इस अञ्चल का नाम है—बादामी बाग। इसके आस-पास बहुत से बादाम, खुबानी आदि के बाग हैं। एक ओर बाग का, दूसरी ओर झेलम नदी का और तीसरी ओर शंकराचार्य मठ की झाँकी का आनन्द लेते हुए अधिकारी, जीवन का कितना गहरा आनन्द लेते हैं!

अब हम श्रीनगर के प्रमुख अञ्चलों की झाँकियाँ देखते हुए आगे बढ़ने लगे। बड़े-बड़े मकान, दूकान और चौराहे आये तो कुछ बेबसी और गरीबी की तसबीरें भी देखने में आयीं।

अन्त में हम अपनी मञ्जिल पर पहुँच गये और मञ्जिल का नाम है—अमीरा कदल। श्रीनगर का सर्वप्रसिद्ध पुल और शॉपिंग केन्द्र। इस पुल के इर्द-गिर्द ही श्रीनगर का सारा सौन्दर्य सिमट कर आ गया है।

श्रीनगर के पहलू में

●

झेलम की मीठी सुबह प्र० सं० ३३
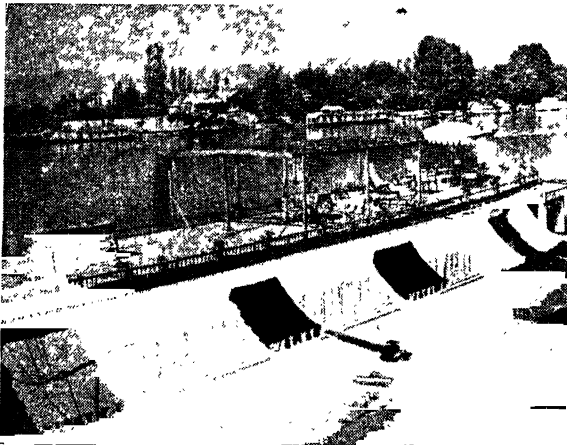
डल झील में प्रथम श्रेणी का हाउसबोट प्र० सं० ३४

स्टेशन पर उतरते ही कुली, स्टेशन के बाहर आने पर रिक्शे-ताँगेवाले और तीर्थ स्थानों में पण्डे जिस प्रकार जोंक की तरह आकर यात्रियों से चिपक जाते हैं, ठीक उसी प्रकार यहाँ बस के रुकते ही हाउस बोट तथा होटल के एजेण्ट पीछे पड़ जाते हैं। प्राचीनकाल में भाँट लोग राजदरबारों में जाकर जिस प्रकार राजाओं की प्रशंसा कर उन्हें मूड़ा करते थे, ठीक उसी प्रकार ये लोग अपने होटलों की प्रशंसा करते हुए यात्रियों को अपने यहाँ चलने का अनुरोध करते हैं। सिर्फ यही नहीं, घटकों की तरह होटल और हाउसबोटों के ये आकर्षक चित्र भी पेश करते हैं।

हर यात्री स्वभावतः परदेश में बादशाह समझा जाता है और वह कुछ अवश्य दरियादिल बनता है, भले ही अपने घर कंजूस क्यों न हो। हम भी इस दोष से बरी नहीं थे। होटल माने घर। चाहे वह ईंट-पत्थर का हो या लकड़ी-लोहे का। सारी जिन्दगी ईंट-पत्थर के मकानों में बितानी पड़ती है, पैदा होने से लेकर मौत आने तक। ऐसी हालत में कुछ नवीनता आने पर स्वभावतः आग्रह बढ़ता ही है। मैं, प्रदीप जी और इतिहासज्ञ हाउस बोट की ओर आकर्षित हुए। सोचा गया, क्यों न कुछ दिन नदी में जिन्दगी का मजा लिया जाय। लेकिन हमारी किस्मत में यह सौभाग्य लिखा नहीं था। अचानक बनर्जी साहब का तीव्र स्वर सुनाई पड़ा—"भाईजान, हम हाउसबोट में नहीं जायेगें। बेकार क्यों वक्त बर्बाद कर रहे हैं। हमें खालसा होटल में ठहरना है।"

इस आवाज को सुनते ही हम एक दूसरे की ओर देखने लगे। आखिर इस वृद्ध को क्या हो गया है। क्यों हमारे अरमानों का खून कर रहा है, पर दूसरे ही क्षण हमारे बदन का सारा खून ठण्डा हो गया। यकीन मानिये श्रीनगर की सर्दी से नहीं, बल्कि हाउसबोट के रेट को देखकर। हाउस बोट के रेट को देखकर यह विश्वास हो गया कि इन स्थानों में ठहरना भाग्यशाली लोगों के भाग्य में बदा है। वहाँ ठहरेंगे—राजा, मन्त्री, विधायक, मिल मालिक और विदेशी पर्यटक।

हाउस बोट

काश्मीर में हाउसबोट उस नाव को कहते हैं जो हमेशा झेलम या उससे निकली नहरों पर तैरती रहती हैं। उसमें ४-५ कमरे होते हैं। जीवन की सारी सुविधाएं उसमें रहती हैं। चालीस से साठ हाथ तक लम्बी और दस

हाथ चौड़ी होती हैं। इसमें रसोई घर, बाथरूम, ड्राइङ्ग रूम, सोने का कमरा, और अन्य कमरे रहते है। आप चाहें तो दिन भर ताश खेलिये, गप्प लड़ाइये या कलम घसीट कर काश्मीर का इतिहास लिखिये, पर आपको यह जरा भी महसूस नहीं होगा कि आप नाव पर हैं। एक तरह से इसे एक छोटा-मोटा बङ्गला ही समझिये। सबसे बड़े मजे की बात यह है कि आपको किसी काम के लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। साग-सब्जी से लेकर पान सिगरेट तक आपके दरवाजे पर शिकारा के द्वारा पहुँचाया जायगा। हर तरह का रसद आपके पास पहुँच जायगा, आप अपनी रुचि के अनुसार खरीदिये और खाइये। इन हाउस बोटों में एक और सुविधा रहती है और इस सुविधा का उपभोग हाउसबोट वाले अवश्य करते हैं। वह सुविधा है—हाउसबोट के जरिये श्रीनगर के अञ्चल का टहलान और डल झील में भ्रमण। नहरों की बात छोड़िये, झेलम नदी का पानी इतना गन्दा है कि नहाने की कौन कहे, मुँह धोने की इच्छा नहीं होती। लेकिन जब हाउसबोट डल झील में जाता है तब जल क्रीड़ा से अपने को रोक पाना मुश्किल हो उठता है। तबीयत हो उपर से छलांग मारकर कूदिये, तैरिये और जब थक जाइये तब ऊपर चले आइये। जल-क्रीड़ा का वास्तविक आनन्द हाउसबोटों में ही मिलता है।

अगर जलक्रीड़ा का शौक न हो तो दिन भर भीतर आराम कीजिये और सुबह-शाम छत पर कुर्सी डालकर पहाड़ी सौन्दर्य का आनन्द लीजिये। श्रीनगर में हाउसबोटों की संख्या एक-दो नहीं बल्कि डेढ़-दो हजार है और उनमें अधिकांश पर्यटक रहते हैं। लेकिन इन हाउस बोटों का नाम सुनते

ही तबीयत मायूस हो गयी। हिन्दी और उर्दू नाम तो बहुत कम मिले पर अंग्रेजी नाम अधिक मिले।

अंग्रेजों के शासनकाल से ही हाउसबोटों में रहने की एक विशेष परम्परा चालू हुई थी। अधिकतर अंग्रेज और राजागण गर्मी के दिनों में शैल-विहार करने आते थे। इनके अलावा जो अफसर या आले दर्जे के व्यक्ति आते थे, उन्हें अंग्रेजी अधिक प्रिय थी, इसलिए 'ग्रेडान', 'ड्यूक आफ विण्डसर' 'हानी', 'मोनालिसा', 'पीकाक' 'रौजमेरी' नेपचून आदि नामों की अधिकता है और 'शीला' 'मेनका' 'इन्दिरा' 'गुलो बुलबुल' आदि नाम वाले हाउस बोटों की काफी कमी है।

श्रीनगर की भूमि में कदम रखते ही पहली ख्वाहिश जिस प्रकार अपूर्ण रह गयी, उससे इतनी निराशा हुई जो बयान के बाहर है। सम्भवतः आपको हमारे दर्द का अहसास न हो, इसलिए हाउस बोटों का चार्ट पेश कर रहा हूँ ताकि हमारी बेबसी का अन्दाजा आपको भी हो जाय—

कमरा	दर्जा	किराया	भोजन तथा निवास
५ कमरे वाला सुसज्जित हाउस बोट	स्पेशल	८०० रुपया प्रति माह ५०० ,, दो हफ्ता २५० ,, एक हफ्ता ४० ,, एक दिन ३ ,, प्रति व्यक्ति या प्रत्येक बालक	३०) एक व्यक्तिका एक दिनका ४०) दो व्यक्तियों का एकदिनका चार्ज इसके उपर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन १०) चार्ज किया जायगा।

कमरा	दर्जा	किराया	भोजन तथा निवास
उपर्युक्त	प्रथम श्रेणी	६५० रुपया प्रति माह ३८० ,, दो हफ्ता २०० ,, एक हफ्ता ३० ,, प्रति दिन २ ,, प्रति व्यति या प्रत्येक बालक	२५) प्रति व्यक्ति एक दिन ३५) दो व्यक्तियों के लिए एक दिन का चार्ज इसके ऊपर ८) प्रति व्यक्ति, प्रति दिन
उपर्युक्त	द्वितीय श्रेणी	५०० रुपया प्रति माह ३४० ,, दो हफ्ता १७० ,, एक हफ्ता २२ ,, एक दिन १ ,, प्रति व्यक्ति या प्रत्येक बालक	प्रति व्यक्ति एक दिन दो व्यक्तियों का एक दिन का चार्ज इसके ऊपर प्रति व्यक्ति ८ रुपया प्रति दिन
उपर्युक्त	तृतीय श्रेणी	३५० रुपया प्रति माह २०० ,, दो हफ्ता ११५ ,, एक हफ्ता १५ ,, एक दिन १ ,, प्रति व्यक्ति या प्रत्येक बालक	प्रति व्यक्ति एक दिन दो व्यक्तियों का एक दिन का चार्ज इसके ऊपर प्रति व्यक्ति ६ रुपया प्रति दिन

कमरा	दर्जा	किराया	भोजन तथा निवास
४ कमरे वाला हाउस बोट	स्पेशल	६०० रुपया प्रति माह ३७५ ,, दो हफ्ता २०० ,, एक हफ्ता ३० ,, एक दिन ३ ,, प्रति व्यक्ति या प्रत्येक बालक	प्रति व्यक्ति एक दिन दो व्यक्तियों का एक दिन का चार्ज इसके ऊपर प्रति व्यक्ति १०) प्रति दिन
उपर्युक्त	प्रथम श्रेणी	५०० रुपया प्रति माह ३१० ,, दो हफ्ता १८० ,, एक हफ्ता २५ ,, एक दिन २ ,, प्रति व्यक्ति या प्रत्येक बालक	प्रति व्यक्ति एक दिन दो व्यक्तियों का एक दिन का चार्ज इसके ऊपर प्रति व्यक्ति ८) प्रति दिन
उपर्युक्त	द्वितीय श्रेणी	३५० रुपया प्रति माह २६० ,, दो हफ्ता १२० ,, एक हफ्ता १५ ,, एक दिन १ ,, प्रति व्यक्ति या	प्रति व्यक्ति एक दिन दो व्यक्तियों का एक दिन का चार्ज इसके ऊपर प्रति व्यक्ति ८) प्रति दिन

कमरा	दर्जा	किराया	भोजन तथा निवास
उपर्युक्त	तृतीय श्रेणी	२५० रुपया प्रति माह १६० ,, दो हफ्ता १२० ,, एक हफ्ता १५ ,, एक दिन १ ,, प्रति व्यक्ति या प्रत्येक बालक	प्रति व्यक्ति एक दिन दो व्यक्तियों का एक दिन का चार्ज इसके ऊपर प्रति व्यक्ति ६) प्रति दिन

इसके अलावा हाउसबोटों के कुछ और भी नियम हैं जिनमें चार प्रमुख हैं। (१) पाँच कमरों वाले हाउसबोटों में ६ पुरुष और ४ बच्चों तथा चार कमरों वाले हाउसबोटों में चार पुरुष और २ बच्चों के साथ रह सकते हैं। (२)—१० वर्ष के बच्चों का आधा चार्ज लिया जाता है। (३) स्पेशल तथा प्रथम श्रेणीवाले हाउसबोटों में बिस्तर दिया जायगा। (४) प्रत्येक हाउसबोट में ४ नौकरों की सेवाएँ, प्रकाश और किराया सम्मिलित है।

हाउसबोटों की इस नियमावली को देखकर औसत नागरिक का खून आसानी से ठण्डा हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं। फलस्वरूप हम उस होटल में आये जहाँ इसके पूर्व बनर्जी साहब आकर ठहरे थे। यह खालसा होटल कोई बुरा नहीं था। इसके अलावा हम इतने बड़े रईस भी नहीं थे कि नीडो, पैलेस, पार्क, वोलवार्ड आदि जैसे होटलों में टिकते। स्टैण्डर्ड व्यक्ति, स्टैण्डर्ड होटल तभी पसन्द करते हैं जब उनके दिल के साथ-साथ जेब भी स्टैण्डर्ड हो।

२०० मील लगातार सफर करने के कारण सारा पेट मथ गया था। अब तक प्राकृतिक दृश्यों में ध्यान बँटे रहने के कारण हम इस शरीर के कष्ट की ओर ध्यान नहीं दे सके थे, पर ज्यों ही होटल में जगह मिली त्यों ही पैर पसार कर सोने के लिए हम व्याकुल हो उठे। अगर राह में प्राकृतिक दृश्यों में मन बहलता न रहता तो यह निश्चित था कि मैं औरों की तरह कै कर देता और अस्वस्थ हो जाता।

बनर्जी साहब ने भोजन करने के बजाय फलाहार करने का प्रस्ताव रखा था। यद्यपि भूख लगी हुई थी, परन्तु भीतर ही भीतर शरीर थकावट से चूर-चूर हो गया था। इच्छा रहते हुए भी मैंने भोजन नहीं किया ताकि एक वक्त के उपवास से शरीर कुछ हल्का हो जाय। बाकी लोगों ने डटकर फलाहार किया। जलपान करने के पश्चात् जब 'इतिहासज्ञ' तरोताजा हो गये, तब उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि कुछ दूर टहल आया जाय। लेकिन इस प्रस्ताव का सबसे पहले मैंने विरोध किया। फलस्वरूप सभी अपना-अपना बिस्तर लगाकर सो गये।

खाली पेट रहने तथा होटल के शोरगुल के कारण काफी देर तक नींद नहीं आयी। सोचा—इतिहासज्ञ का प्रस्ताव स्वीकार कर अगर कुछ देर टहल आता तो शायद तबीयत बहल जाती और रात का श्रीनगर देख भी लेता। लेकिन अब तो समय बीत चुका था।

सुबह जब नींद खुली तब देखा—खिड़की से ठण्डी-ठण्डी हवा आ रही है, बाहर चिनार के वृक्षों पर बैठे पक्षी कलरव कर रहे हैं और सोया हुआ श्रीनगर धीरे-धीरे करवट बदल रहा था। सूर्य की लालिमा से सम्पूर्ण श्रीनगर होली खेल रहा था।

जाड़े की रात हो, बगल में सुन्दरी सोयी हो और उसके आनन पर चाँद की रोशनी झिलमिला रही हो—उस वक्त उसका सौन्दर्य जैसा देखने में आता है, ठीक वही रूप, वही रङ्ग श्रीनगर ने ले रखा था। ऊपर गिरि-राज का उन्नत भाल मन्दिर के गुम्बज की भाँति दिखाई दे रहा था और उस पर जमी हुई बर्फ, श्वेत शाल की तरह प्रतीत हो रही थी। नीचे धरती का चित्र देखते ही वितृष्णा से मन भर उठा।

अक्सर जब पत्नी काफी देर तक खर्राटे भरती रहती है, तब जगाये जाने पर जिस प्रकार वह हड़बड़ाकर उठती है, उसके उस समय का वह रूप देखकर मन में वितृष्णा ही नहीं, वैराग्य भी उत्पन्न हो जाता है। खुले हुए बाल, अस्त-व्यस्त कपड़े और परेशानियों से उलझी आकृति देखकर शायद ही कवित्व की भावना मन में उत्पन्न हो। श्रीनगर की धरती का रङ्ग भी उसी प्रकार का है। ऊपर नजर उठाइये तो श्रीनगर षोडषी है और नीचे, ढली हुई प्रौढ़ा।

बगल के कमरे में प्रदीप जी और इतिहासज्ञ मुर्दे की भाँति पड़े हुए थे। बनर्जी साहब की नाक इञ्जन की तरह शंटिङ्ग कर रही थी। राम-दास दैत्य की तरह पाँव पसारे पड़ा था। मैं गुसलखाने में चला गया और जब वापस आया तो देखा—बनर्जी साहब जम्हाई ले रहे हैं और रामदास बीड़ी फूँक रहा है। प्रदीप जी और इतिहासज्ञ अभी तक दूसरी दुनिया में थे।

"निपट आये?" बनर्जी ने पूछा।

प्रत्युत्तर में सर हिलाकर मैं अपने कपड़े फैलाने लगा। तब तक प्रदीप जी और इतिहासज्ञ भी उठ बड़े। चाय जलपान के पश्चात् जब हम होटल

से बाहर आये उस समय नौ बज चुके थे। रात में हल्की सी सर्दी थी, इस समय मौसम सुहावना था। श्रीनगर की इस जलवायु पर मुझे आश्चर्य हुआ।

श्रीनगर बहुत बड़ा शहर नहीं है। पैदल घूमकर देखने लायक कोई ऐसा स्थान नहीं है जिसे देखकर हृदय गदगद हो जाय, बशर्ते आप इसके पूर्व दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और जयपुर देख चुके हों। यह नगर बनारस या इलाहाबाद का एक अञ्चल जैसा लगता है। नगर निर्माण की दृष्टि से इसका मुकाबला किसी नगर से करना व्यर्थ है। औसत दर्जे के किसी भी नगर की तुलना इस नगर से आसानी से की जा सकती है। अधिकतर मकान लकड़ी के बने हुए हैं। कुछ मकानों के ऊपर मिट्टी डालकर खेत बना दिये गये हैं। ऐसे मकान श्रीनगर वासियों को चाहे जितना लाभ पहुँचाते हो, पर यात्री जब इस हरियाली को देखते हैं तब उनका हृदय प्रसन्न हो उठता है। इसके अलावा नगर का एक रूप और है—चारों तरफ पहाड़ों से घिरा हुआ नगर प्याला या कटोरा की तरह लगता है। इसका अनुभव तभी होता है जब आप शंकराचार्य पर्वत के ऊपर चढ़कर श्रीनगर की ओर देखें। कहा जाता है, हिन्दुस्तान के अन्य पहाड़ी स्थानों की तरह यहाँ पानी नहीं बरसता। यही वजह है कि इस नगर का सौंदर्य हमेशा षोडषी बाला की तरह बना रहता है। झेलम में बाढ़† कभी नहीं आती। यहाँ तक कि पहाड़ी स्थान में बहते रहने पर भी उसकी धारा में प्रखरता नहीं है। शायद इसीलिए आधा श्रीनगर पानी में बसता है। कहने का मतलब, एक तिहाई लोग नदी, नहर और झीलों में नाववाले

---

† सन १९५९ में प्रथमबार झेलम में भयंकर बाढ आयी थी।

मकानों में रहते हैं। पानी में रहने का क्या आनन्द है, इसका अनुभव तो उन्हें होगा ही, पर इन लोगों के इस सौभाग्य पर हर किसी को ईर्ष्या हो सकती है, इसमें सन्देह नहीं। सम्भवतः इसीलिए श्रीनगर को नावों का नगर कहा जाता है और दूसरी ओर झेलम नदी से निकली नहरों के कारण नहरों का नगर भी कहा जाता है। शहर के प्रत्येक अञ्चल में मकड़ी के जाले की तरह नहरों का जाल बिछा हुआ है। झेलम नदी शहर के ठीक मध्य से बहती है। नहरों के द्वारा अधिकतर यातायात और व्यापार होता है। आर्थिक और समय के बचत की दृष्टि से नहरों को यात्रा अधिक सुविधाजनक है।

पैदल जितनी दूर तक हम घूम सकते थे, उतनी दूर तक टहल आये। आधुनिक ढंग से सजी दूकानों में, काश्मीरी कलाकारों द्वारा निर्मित चाँदी के महीन कार्य, रेशम-ऊन के तागों से बिने गये फूल, पत्ते, पशु, पक्षी आदि देखने में आये। इनकी कृतियों को देखकर सहज ही इनकी कला-प्रियता का अनुभव हो जाता है। लेकिन इतिहास के विद्यार्थियों को अद्‌भुत बोध नहीं होता। मैदानी इलाकों में बसने वाली जातियों से पहाड़ी जातियों के लोग अधिक मेहनती और कठोर जीवन यापन करने वाले होते हैं। अनु-कूल जलवायु पाने के कारण वे परिश्रम करने में घबराते नहीं। यही वजह है कि संसार की सभी पहाड़ी जातियाँ जो कला-कृतियाँ हमें देती हैं, उन्हें मैदानी इलाकों में बसने वाले लोग नहीं दे पाते। स्विट्जरलैण्ड की घड़ियाँ सारे संसार में ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। काश्मीर की शाल, आसाम की अण्डी-चादर आदि इसके प्रमाण हैं।

६ वर्ग मील के फैलाव में बसा हुआ यह नगर समुद्रतल से ५५००

फुट ऊँचा है। कहा जाता है कि काश्मीर में श्रीनगर को राजधानी के रूप में बसाने का श्रेय प्रियदर्शी अशोक को है। विद्वानों का अनुमान है कि प्राचीन राजधानी श्रीनगरी पाण्डरेठन थी, जो आगे चलकर श्रीनगर के नाम से प्रसिद्ध हो गया। कुछ विद्वान श्रीनगर को सूर्य का नगर मानते हैं।

काश्मीर की राजनीतिक स्थिति

काश्मीर को प्राचीन इतिहास की जानकारी के लिए महाकवि कल्हण की राजतरंगिणी से बढ़कर अन्य कोई पुस्तक शायद ही हो। उससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि ईसा से ३००० वर्ष पूर्व काश्मीर पर हिन्दुओं का शासन था। गोनन्द प्रथम ३१२१ ई० पू० काश्मीर का राजा बना था। इसके बाद दामोदर प्रथम राजा बना। कहा जाता है कि दामोदर प्रथम के पश्चात गोनन्द द्वितीय जब काश्मीर का शासक बना तब इसी राजा ने महाभारत के युद्ध में भाग लिया था।

सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए २५० वर्ष ई० पू० में आक्रमण कर काश्मीर को अपने राज्य में मिला लिया। इसके बाद इस देश पर तातारियों और सीथियनों के आक्रमण हुए। १००ई० पूर्व काश्मीर पर सीथियन शासक थे। इसके बाद यह कुशानों के अधिकार में आया। इन लोगों ने कनिष्कपुर, हुष्कपुर और जुष्कपुर तीन नगर बसाये। इस वंश ने बहुत दिनों तक इस देश पर राज्य किया। इसके बाद गोनन्द तृतीय का वंश इस राज्य का अधिकारी बना। छठी शताब्दी में हूणों ने काश्मीर पर अधिकार कर लिया। इस वंश के राजा मिहिरगुल को कल्हण ने काश्मीर का रावण कहा है। इसके बाद गोदित्य, मित्रगुप्त, चन्द्रापीड़, तारापीड़ और ललितादित्य शासक बने। ललितादित्य ने पंजाब, कन्नौज, तिब्बत,

और पीकिंग तक अपना साम्राज्य बढ़ा लिया था। ललितादित्य के बाद १३ राजा हुए। नवीं शताब्दी में अवन्ति बर्मन काश्मीर का शासक बना। इस राजा ने भी प्रियदर्शी अशोक और कनिष्क सम्राट की तरह काश्मीर में अनेक मन्दिर बनवाये। अवन्तिपुर इसी का बसाया हुआ है। इसके अनन्तर अनेक राजा हुए, परन्तु वे इतने ख्याति प्राप्त नहीं थे। महारानी दिछा अवश्य अपने गुणों के कारण इतिहास का कलंक बन गयीं।

इसके बाद क्रमशः तातार, मिर्जा, चकवंश, मुगल और पठानों ने इस देश पर अधिकार जमाया। इनमें जेनुल आबदीन ने काश्मीर की काफी तरक्की की। गृह उद्योगों को बढ़ावा देकर काश्मीरियों को कलाकार बनाने का श्रेय एकमात्र इसी को है। इसके गुणों के कारण काश्मीरी जनता इसे बटशाह या बड़शाह कहती है।

सन् १८५६ में यह राज्य अकबर के अधिकार में आया। अकबर के समय में ही हरि पर्वत पर क़िला और दीवारें बनायी गयीं जो आज भी मौजूद हैं। अकबर के पुत्र जहाँगीर के शासन काल में वेरी नाग, अच्छ-बल, नसीम बाग और शालीमार बाग का निर्माण हुआ। जहाँगीर के बारे में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्राकृतिक सौन्दर्य की देन के अलावा उसने काश्मीर को इस ढंग से सँवार दिया है, कि आज का काश्मीर पर्य-टकों के लिए तीर्थ स्थल बन गया है। अगर जहाँगीर की कृपा इस नगरी पर न होती तो श्रीनगर इतना आकर्षक न लगता। नूरजहाँ ने पत्थरों की मस्जिद बनवायी जिसमें आजकल नेशनल कान्फ्रेंस का कार्यालय है। शाहजहाँ ने भी कई बागों को बनवाया था।

सन् १८६६ ई० में महाराज रणजीत सिंह ने अफगानों के कब्जे से काश्मीर को मुक्त कराने के लिए गुलाब सिंह के नेतृत्व में सेना भेजी और

इस प्रदेश को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। महाराजा की मृत्यु के पश्चात् यह राज्य अंग्रेजों के अधिकार में आया, जिसे उन लोगों ने जम्मू के राजा गुलाब सिंह को ७५ लाख रुपये में बेच दिया। यह खरीद-फरोख्त लार्ड हार्डिञ्ज के शासन काल में हुई थी। इसमें भी अंग्रेजों की एक चाल रही। वे यह जानते थे कि राज्य में मुसलमान प्रजा अधिक है। खासकर 'दरद' जनता उन्हें परेशान अवश्य करेगी। ऐसी हालत में आगे चलकर साम्प्रदायिक युद्ध की अग्नि भड़काकर शासन सूत्र अपने हाथ में ले लेगें। किसी भी राज्य के अधिकारी को अत्याचारी, सम्प्रदायवादी घोषित कर देना, अंग्रेजों के लिए मामूली बात थी। लेकिन वे अपने इस कार्य में सफल नहीं हो सके। कांग्रेस के असहयोग आन्दोलनों ने अंग्रेजों को इतना परेशान कर दिया कि लाचारी में पश्चिम द्वार की रक्षा का भार डोंगरा वंश को देकर वे शान्त हो गये।

इधर १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही पाकिस्तान के बर्बर हमले हुए और काश्मीर का भाग्य राष्ट्रसंघ के फाइलों में दब गया। पता नहीं, इस नाटक का कब अन्त होगा। शेरे काश्मीर कहे जाने वाले शेख अब्दुल्ला की देश भक्ति धीरे-धीरे काश्मीर जनता के सामने स्पष्ट होती जा रही है। वर्तमान समय में निस्सन्देह काश्मीरी जनता की माली हालत अच्छी है। श्रीनगर को अगर कुछ और अच्छे ढंग से संवार दिया जाय तथा गन्दगी पर विशेष ध्यान दिया जाय तो यह निश्चित है कि आने वाले पर्यटक गुलमर्ग, पहल गाँव की ओर न भागेंगे।

श्रीनगर का रूप दर्शन

●

सोनमर्गका
एक दृश्य

अमीरा
कदल
पृ० सं० ३४
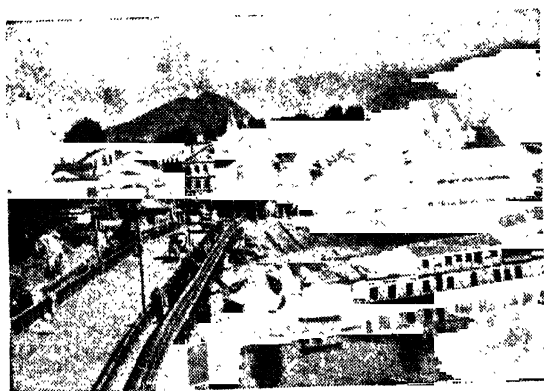
श्रीनगर आने वाले अधिकांश यात्री शिकारा (नाव) द्वारा झेलम के सात पुलों के नीचे से गुजरना ही अपना प्रथम कार्य-क्रम बनाते हैं और यह है भी ठीक। लेकिन इस भ्रमण में केवल उन्हीं पर्यटकों को विशेष आनन्द आता है जिन्हें अपने यहाँ नाव द्वारा भ्रमण करने का सुख प्राप्त नहीं होता। बनारस में रहने के कारण हम उस सुख से वंचित नहीं रहे। यह ठीक है कि झेलम में शिकारा द्वारा जो आनन्द मिलता है, वह आनन्द बनारस में नहीं मिलता, परन्तु बनारस में जो आनन्द है,

वह श्रीनगर में नहीं है। केवल बनारसी होने के कारण मैं वकालत नहीं कर रहा हूँ, बल्कि इसलिए कर रहा हूँ कि दोनों का आनन्द ले चुका हूँ।

शिकारे द्वारा भ्रमण

उसी दिन शाम को हमने शिकारा लिया और भ्रमण करने के लिए चल पड़े। झेलम नदी के दोनों ओर श्रीनगर बसा हुआ है और उसपर बने सात पुल दोनों भागों को मिलाते हैं। काश्मीरी भाषा में पुल को 'कदल' कहा जाता है। इन सातों पुलों में 'अमीरा कदल' सबसे अधिक व्यस्त क्षेत्र है। इसी पुलके आस-पास श्रीनगर की बड़ी-बड़ी दूकानें तथा होटल हैं। पुल के एक ओर एयरोड्रोम रोड, सेण्ट्रल मार्केट है तो दूसरी ओर बादशाह रोड और रेजीडेन्सी रोड है। यही दोनों सड़कें श्रीनगर की जान हैं। इनके अलावा अन्य सड़कें हैं तो जरूर सुन्दर, परन्तु टहलान के लिए मजेदार नहीं है। इन सड़कों पर टहलते रहिये, जी नहीं ऊबता। श्रीनगर में अमीरा कदल का वही महत्व है जो इलाहाबाद में सिविल लाइन्स का, दिल्ली में कनाट सरकस का, बम्बई में हार्नवी रोड तथा बनारस में चौक का। यहाँ अधिकतर धनाढ्य लोग बसते हैं।

शिकारा की प्रशंसा में इतना ही कहना पर्याप्त है कि जीवन में इतने सुन्दर ढंग की नाव पर बैठने का मौका मुझे कभी नहीं मिला था। आराम से बैठने लायक दिव्य जगह है। स्प्रिंगदार गद्दा, रंगीन खोल से आच्छादित मसनद, चारों तरफ हाथ के कढ़े रंगीन पर्दे और ऊपर चटाई का आवरण है। वजन में हल्के होने के कारण ये हवा से बातें करते हैं। इसके अलावा एक खूबी और है। अगर आप छुआछूत नहीं मानते तो शिकारा के ड्राइवर से टोस्ट और चाय बनवाइये, आप खाइये तथा उसे खिलाइये। वह भी

खुश और आप भी, नाविक भी और रसोइया भी। क्या यह आनन्द भारत के किसी भी अंचल में कोई नाविक पा सकता है ?

देखते ही देखते हमारा शिकारा 'हब्बा कदल' आ गया। इस क्षेत्र में काश्मीर के कलाकारों की दूकानें हैं। लकड़ी पर नक्काशी करने वाले, पन्नी बनाने वाले तथा शालों पर कढ़ाई करने वाले कारीगर अपने कार्यों में मश-गूल दिखाई देगें। और यह क्रम 'फतेह कदल' तक है। फतेह कदल के पास ही काश्मीर का प्रसिद्ध रघुनाथ जी का मन्दिर है। धीरे-धीरे हम चौथे पुल के पास आने लगे। चार-चार तल्ले के बने हुए मकान, मन्दिर, मस्जिद आदि दिखाई दिये। पास ही महाराज गंज बाजार है। यहीं पर नूरजहाँ द्वारा बनवायी गयी पत्थर मस्जिद है। चूंकि यह मस्जिद एक औरत द्वारा बनवायी गयी है, इसलिए कट्टर पन्थी लोग इसमें नमाज नहीं पढ़ते।

चौथे पुल के पास ही शाह हमदान मस्जिद है। यह एक आयताकार मस्जिद है। इसका छत गुम्बदाकार है। कहा जाता है, पहले यह स्थान मन्दिर था। आज भी यहाँ काली देवी का एक मन्दिर है। सुलतान कुतुब-द्दीन के राज्य में हमदान (फारस) से मीर सईद अली नामक एक पीर काश्मीर आया, जो बाद में शाह हमदान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह व्यक्ति काश्मीर और लद्दाख में इस्लाम का प्रचार करने आया था। काश्मीर की जनता इस व्यक्ति से इतनी प्रभावित हुई कि इसके नाम पर एक इमारत बनवा दी। लकड़ी का यह बना हुआ मस्जिद निस्सन्देह दर्शनीय स्थान है। इस स्थान से लगभग आधी मील आगे जुम्मा या जामिया मस्जिद है। इस मस्जिद का निर्माण सन् १४०४ ई० में हुआ था। काश्मीर की सबसे पुरानी मस्जिद यही है।

पाँचवें पुल 'अलीकदल' से श्रीनगर का दूसरा चित्र सामने आता है। जीर्ण-शीर्ण झोपड़ियाँ, गन्दे पानी के नाले, इन्सान के नाम पर पशु की तरह जिन्दगी बसर करने वालों के मकान दिखाई देते हैं। काश्मीर आने वाले यात्रियों की निगाह में इधर का दृश्य अवश्य अखर जाता है, परन्तु इसे देखे बिना श्रीनगर को समझा नहीं जा सकता, मानव चरित्र नहीं समझा जा सकता और न भारत के वास्तविक जीवन को ही परखा जा सकता है। केवल श्रीनगर में ही क्यों, हिन्दुस्तान के हर शहर में इस तरह के दृश्य अनायास देखने को मिलते हैं।

छठा पुल 'नवाकदल' और सातवां पुल 'सफाकदल' पार करने के बाद शिकारा छत्ताबल के पास आकर ठहर गया। ऊपर साधारण पुल है। छत्ताबल की राह से गर्मी के दिनों में, झेलम का पानी नहर में फाटक खोलकर छोड़ते हैं। यहाँ कुछ देर इन्तजार करने के पश्चात् हम अब झेलम को छोड़कर नहर में चलने लगे। पानी से निकलती हुई गर्म भाप शान्त हो चुकी थी। हवा में कुछ नमी आ गयी थी। हम आराम से लेट गये। केवल चप्पुओं की आवाज हमारा ध्यान भंग कर दे रही थी। कभी-कभी सड़क से गुजरने वाले तांगे और मोटर की आवाज सुनाई पड़ रही थी। हाउस बोटों के झरोखों से रेडियो की ध्वनि हवा में तैरती हुई हमारे शिकारे तक आ रही थी। इस ओर बड़े-बड़े आलीशान मकान दिखाई दिये जो श्रीनगर के सौन्दर्य के अनुरूप थे।

श्रीनगर का एक इलाका देखकर जब हम लौटे, उस समय रात के साढ़े ९ बज चुके थे।

दूसरे दिन हमने श्रीनगर के दर्शनीय स्थानों के बारे में अपने होटल में ही बहुत सी जानकारी प्राप्त कर ली। हमारी इच्छा थी कि चलकर पहले शालिमार, निशात और चश्माशाही देख लें, परन्तु बनर्जी साहब ने इस पर आपत्ति प्रकट की। उन्होंने कहा कि अगर आप उधर का कार्य-क्रम बनाते हैं तो फिर लौटकर श्रीनगर आने की तबीयत नहीं करेगी और शहर इतना फीका लगेगा कि वापस जाने को तैयार हो जायेगें। इससे अच्छा है कि पहले श्रीनगर का बचा-खुचा स्थान देख लें ताकि न देख पाने का खेद मन में न रह जाय।

हमें यह राय पसन्द आ गयी। इससे एक लाभ यह भी हुआ कि सफर की थकान मिटाने का अच्छा मौका भी मिल गया।

श्रीनगर को लोग नावों का, नहरों का नगर कहते हैं, पर मैं इसे बागों का नगर कहना अधिक पसन्द करूँगा। सभी बाग एक से एक बढ़ कर हैं। इन बागों में चिनार के वृक्ष तो मानों उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते है। सच पूछिये तो चिनार वृक्षों के कारण ही इस नगर का नाम श्रीनगर सार्थक होता है वर्ना भारत में ऐसे नगरों की कमी नहीं है। अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण ही इस नगर का नाम करण स्वतः श्रीनगर हो गया और यह 'श्री' आज भी वर्तमान है। झेलम की दाहिनी ओर जितना सौन्दर्य है, उतना बायीं ओर नहीं है। सच तो यह है कि झेलम की दाहिनी ओर ही जीवन है।

एक ओर जहाँ यह नगर प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण यात्रियों का हृदय मोह लेता है, वहीं मनुष्य द्वारा निर्मित बागों की अधिकता से यह

स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ के लोग कितने शौकीन हैं। उस्मान पार्क, गांधी पार्क, म्युनिसिपल पार्क, बजीर पार्क, प्रताप पार्क, राय मुन्शी बाग और चिनार बाग तो शहर के भीतर ही है। इन बागों में चिनार पार्क सबसे अधिक जानदार है। अगर इन्सान को खाने-पीने की चिन्ता न हो तो यहाँ बड़े आराम से मधुमास मना सकता है।

उस दिन हमें बनर्जी साहब ने इतना दौड़ाया कि बारह बजे के लगभग हम उनसे पनाह माँगने लगे। लेकिन आश्चर्य की बात है कि वे नहीं थके, जब कि उम्र में वे मुझसे काफी बड़े हैं।

शंकराचार्य मन्दिर

शाम के समय हम लोगों ने शकराचार्य मन्दिर देखने का प्रोग्राम बनाया। यह मन्दिर पहल गाँव से आने वाली मुख्य सड़क के दूसरी ओर बादामी बाग के उत्तर दिशा में है। मन्दिर का दर्शन करने के पहले मैंने यह समझा था कि इस मन्दिर का निर्माण जगद्गुरु शंकराचार्य ने करवाया है, परन्तु मेरी यह धारणा गलत साबित हुई।

कहा जाता है कि सम्राट अशोक के पुत्र जालका ने यह मन्दिर २०० ई० पू० बनवाया था। कुछ लोगों का कहना है कि जालका द्वारा निर्मित मन्दिर के पास ही इस मन्दिर का निर्माण एक अन्य राजा ने छठी शताब्दी में करवाया। दोनों में कौन सी बात सही है, कहा नहीं जा सकता। लेकिन मन्दिर से सटी हुई नीचे की दीवारें काफी प्राचीन हैं और बाकी बनावट आधुनिक है।

१००० फुट ऊँचाई तयकर लेने के बाद जब हम ऊपर पहुँचे तब

श्रीनगर की छटा देखकर मुग्ध हो उठे। जिस प्रकार कुतुब से (दिल्ली नहीं) मेहरौली के आस-पास का दृश्य दिखाई देता है, उससे कहीं मनोरम श्रीनगर की घाटी लगी। चारों तरफ नहर और जल ही जल दिखाई दे रहा था। चारों तरफ ऊँची-ऊँची पहाड़ियों के मध्य इतना विस्तृत मैदान का होना प्रकृति का एक वरदान ही है। मेरा तो अनुमान है कि श्रीनगर की गलियों में खाक छानने के बजाय अगर शंकराचार्य मन्दिर से श्रीनगर देख लिया जाय तो अपार तृप्ति तो मिलेगी ही, साथ ही नगर की सम्पूर्ण झाँकी भी प्राप्त हो जायगी। चारों तरफ नहरों का जाल बिछा हुआ है, मानों हिन्दु-स्तान का जीवित नक्शा देख रहे हैं। शहर तो एक बाग सा दिखता है

परी महल

शंकराचार्य मन्दिर से नीचे उतरने के बाद यह सोचा जाने लगा कि अब जायें तो जायें कहाँ? तभी इतिहासज्ञ ने कहा—'पास ही कहीं, ज्योतिष स्कूल के पास परी महल है। अगर आप लोगों की राय हो तो चला जाय।'

प्रदीप जी ने व्यंग्य करते हुए कहा—'परी महल में परी मिलेगी या व्यर्थ ही दौड़ाओगे।'

'यह तो वहाँ जाने पर मालूम होगा। अगर कोई मिली तो आपके हवाले कर दी जायगी।' कहते हुए इतिहासज्ञ हँस पड़े।

यों हमारी इच्छा वहाँ जाने की नहीं थी, परन्तु सहयोगी के प्रस्ताव की अवहेलना नहीं कर सके। गुप्कार के आगे लगभग एक मील आगे जाने

पर हम परी महल में आये। प्रदीप जी ने जो आशंका प्रगट की थी, आखिर वही हुआ वह महज खण्डहर मात्र है। इतिहासज्ञ को भले ही उस भुतहे खण्डहर में कोई रस मिला हो, परन्तु हमारी तबीयत उचट गयी।

कहा जाता है कि १६५० ई० में इस महल को मुसलमान सूफियों ने ज्योतिष कार्य के लिए बनवाया था। आज इसकी यह हालत है कि देख-कर रोना आ जाता है और वहाँ तक आने की तबीयत नहीं होती।

मुग़ल बागों की सैर

●

श्रीनगर आये दो दिन बीत चुके थे। आज तीसरा दिन था। इन दो दिनों में श्रीनगर का रूप-दर्शन हम कर चुके थे। अब यह सोचा गया कि मुगल बागों को भी देख लिया जाय।

मुगल बागों को देखने के लिए सबसे आरामदेह है—शिकारा से डल में घूमते हुए विभिन्न स्थानों को देखना। लेकिन इसमें एक दिक्कत यह होती है कि काफी समय लग जाता है, दूसरे बिना दिन ढले देखने जाने का अर्थ है—मुफ्त में परेशानी मोल लेना। इसमें

सन्देह नहीं कि इससे अधिक आनन्द आता है। हर जगह शिकारा रोककर आप उन स्थानों में पैदल जाकर घूम आयें। अधिकतर मुगल बाग डल के किनारे पर ही हैं, लेकिन सभी की दूरी आधा मील से एक मील तक है। इतनी दूरी डल से पैदल चलकर तै करना पड़ता है। शिकारे से इन स्थानों को देखने का अर्थ है—चार दिन का समय देना। हाँ, एक सुभीता यह रहती है कि डल के सभी स्थानों का आनन्द उठाते हुए आप चलते हैं।

बस से जाने में समय की बचत जरूर हो जाती है, परन्तु डल का आनन्द नहीं मिलता। साथ ही समय का बन्धन रहने के कारण सरसरी तौर से देखने में आता है। फिर भी जो समय देखने के लिए मिलता है, वह अपर्याप्त नहीं होता।

मुगल बागों को देखने का असली मजा रविवार को ही आता है। उस दिन श्रीनगर से एक हुजूम चलता है। हफ्ते भर तक दफ्तरों में सर खपानेवाले बाबू, यात्री और उनके परिवार ठीक उसी प्रकार सैर का आनन्द लेने के लिए जाते हैं जिस प्रकार बम्बई के निवासी चौपाटी या मलाबर हिल जाते हैं।

काश्मीर सरकार की ओर से टूरिस्ट बसें बराबर मुगल गार्डेन, सोनमर्ग, गुलमर्ग, पहल गाँव आदि स्थानों को जाती हैं। जब यात्री इन स्थानों को देखते देखते थक जाते हैं तब बसें उन्हें श्रीनगर वापस ले आती हैं। रविवार के दिन केवल मुगल गार्डेन ही तक बसें जाती है। उस दिन अन्य स्थानों के लिए बसें नहीं मिलतीं। मुगल गार्डेन जाने के लिए अमीरा कदल से सुबह ७-३० पर, फिर दोपहर को २ बजे बसें मिलती हैं। सुबह जाने-

वाली बस दोपहर को भोजन करने के समय १ बजे तक श्रीनगर पहुँचा देती हैं और दोपहर वाली बस रात को ८ बजे तक वापस आ जाती है।

चूँकि हम लोगों को और कोई काम था नहीं, इसलिए सुबह की बस से हम रवाना हुए। बसें आरामदेह तो हैं ही, साथ ही हर रंग के, हर ढंग के यात्रियों के संसर्ग से और भी आनन्द मिलता है।

धीरे-धीरे बस गुप्कार वाली सड़क से निकलकर कर्णसिंह राजपथ की ओर बढ़ी। हमारे एक ओर डल झील थी, दूसरी ओर शँकराचार्य का मन्दिर और सामने जितनी दूर निगाह दौड़ाइये, वहाँ तक डल का किनारा, हाउस बोट और पहाड़ों के शिखर दिखाई दे रहे थे।

हार्वन

थोड़ी देर में हम हार्वन पहुँच गये। आकार प्रकार में यह झील डल से काफी छोटी है। कहा जाता है कि इस झील का निर्माण महाराज प्रताप सिंह ने करवाया था। हार्वन झील श्रीनगर के नागरिक जीवन के लिए विशेष महत्व रखती है। हार्वन झील को श्रीनगर का वाटर वर्क्स कहा जाता है, इसी झील का पानी सारा श्रीनगर पीता है। श्रीनगर से १२ मील दूर निर्जन स्थान में यह झील, वाटर वर्क्स होने के अलावा शिकार प्रेमियों के लिए स्वर्ग से कम नहीं है। बहुत से लोग चारा फेंककर मछली मारते दिखाई दिये। पास ही घना जंगल भी है, जहाँ साधारण व्यक्तियों को जाने नहीं दिया जाता। झील तक पहुँचने के लिए लकड़ी की सीढ़ी बनी है। कुछ वर्ष पूर्व यहाँ पुरातत्व विभागवालों ने खुदाई की थी, जिसमें बौद्धकालीन कुछ सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं।

यहाँ से नगर की ओर देखने पर हरि पर्वत दिखाई देता है। झील के किनारे का दृश्य कोई अधिक आकर्षक तो नहीं है, पर मेला लग जाने के कारण मनोरम तो लगता ही है।

शालिमार बाग

हार्वन से ३ मील पीछे शालिमार बाग में आते ही हमें यह मालूम हो गया कि श्रीनगर में अब तक जो कुछ देखा है, इस बाग के आगे उसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। यह बाग अपने नाम के अनुरूप है। शालिमार बाग का अर्थ है—प्यार का बाग। कुछ लोग इसे प्यार की मंजिल भी कहते हैं। शायद उनका यह विश्वास गलत भी नहीं है। विदेशों में हनीमून मनाने की प्रथा है, अगर भविष्य में कभी वह प्रथा यहाँ प्रारम्भ हुई तो मैं भावी नव-दम्पत्तियों को यही सलाह दूंगा कि वे और कहीं न जाकर इस बाग में हनीमून मनायें।

इस बाग का निर्माण सन १६१६ ई० में जहाँगीर ने नूरजहाँ के लिए करवाया था। कहा जाता है कि खुद नूरजहाँ को भी यह बाग काश्मीर के अन्य बागों की अपेक्षा अधिक पसन्द था। इस बाग में चार चौतरे हैं, दो दरवाजे हैं। प्रत्येक चौतरे पर बारहदरियाँ है। इन बारह दरियों से बैठकर जब हम फौव्वारों के दृश्य का आनन्द देखने लगे, तब ऐसा लगा मानो हम किसी राजमहल में बैठे हैं। बाग के बीच में पक्की नहर है, जिसके दोनों किनारे पगडण्डी है। पास ही एक गहरा कुण्ड है जिसके ऊपर एक ऊँची कुर्सी पर बारहदरी है। इस बारहदरी के आसपास से सैकड़ों फुहारें मस्तानी चाल से हवा में उड़ रही थीं। बरामदे की छत काले पत्थर की

बनी है। इसी बारहदरी के बगल में कई कमरे हैं। कहा जाता है कि इन्हीं कमरों में मुगल बेगमें स्नान करती थीं। इस बाग में भी हावंन से पानी माता है। बाग में चिनार वृक्ष के अलावा विभिन्न फल और मेवों के वृक्ष हैं। यही वजह है कि यहाँ धूप की प्रखरता महसूस नहीं हुई।

निशात बाग

शालिमार बाग में आनन्द लेने में हम इतने मशगूल रहे कि कब एक घण्टा बीत गया, पता ही नहीं चला। अन्त में मोटर के बार-बार बजते हार्न ने हमें अपनी ओर आकर्षित किया।

शालिमार बाग से चलकर हमारी बस निशात बाग के पास आकर रुकी। यहाँ से चश्माशाही दो मील की दूरी पर है।

निशात बाग का एक उपनाम है— खुशी का बाग। एक ढालुआ पर्वत की पृष्ठभूमि में १० सीढ़ियों पर लगाया हुआ यह बाग है। सबसे ऊपरवाली सीढ़ियों पर चढ़कर अगर डल झील की ओर देखें तो डल का सम्पूर्ण दृश्य भोपाल ताल की तरह लगता है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि भोपाल ताल के छोर का पता नहीं चलता और इसकी सीमा आँखों के सामने तैरती रहती है। बीच-बीच में तैरते हुए खेत और बाग किसी चित्रकार की तूलिका से बनाये चित्र की भाँति दिखाई देते हैं।

इस बाग का निर्माण जहाँगीर के शासन काल में हुआ था। कुछ लोग इसे जहाँगीर द्वारा निर्मित कहते हैं और कुछ लोग जहाँगीर के दीवान आसफ खाँ की कृति बताते हैं। खैर, चाहे जिसका बनवाया हुआ

हो, यह बाग शालिमार बाग जितना खूबसूरत तो नहीं है, परन्तु अन्य बागों की अपेक्षा कहीं सुन्दर हैं।

इस बाग में दो दरवाजे हैं। दरवाजे से आगे बढ़ने पर एक चौतरा मिलता है। पास ही काश्मीर में उत्पन्न होने वाले विभिन्न फूलों के पौधे हैं। इसके आगे बढ़ने पर चार चबूतरे मिलते हैं, जिनपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। बाग के बीच में नीचे एक जल स्रोत है जो सीढ़ी दर सीढ़ी झरने के रूप में बहता रहता है। लेकिन यहाँ एक बात याद रखनी चाहिए कि निशात बाग में झरने का दृश्य केवल रविवार को ही देखने में आता है।

हमारे लिए यह सौभाग्य की बात रही कि रविवार का दिन रहा, वर्ना हम भी अन्य यात्रियों की भाँति यह दृश्य देखने से वंचित रह जाते।

चारों तरफ चिनार के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष 'कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा...' यक्ष की तरह आकाश की ओर मुंह किये बादलों से मौन स्वर में अन्तर के उद्‌गारों को प्रकट कर रहे थे। एक ओर डल झील, दूसरी ओर हरि पर्वत और सामने नर-नारियों की अपार भीड़—कहीं भी अकेलापन महसूस नहीं हो रहा था।

चश्मा शाही

निशात बाग से दो मील शहर की ओर आगे बढ़ने पर चश्माशाही बाग मिला। मुगलों द्वारा काश्मीर में बनवाये गये जितने भी बाग हैं, उनमें आकार-प्रकार में सबसे छोटा यही है।

दर असल चश्माशाही एक झरना मात्र है। अपने पानी के लिए
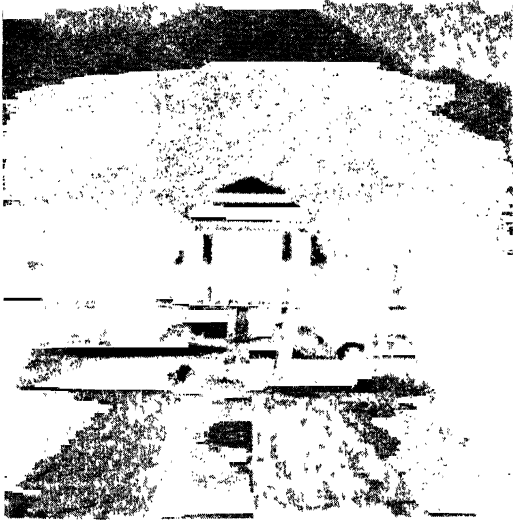
चश्मा शाही
पृष्ठ सं० ६४
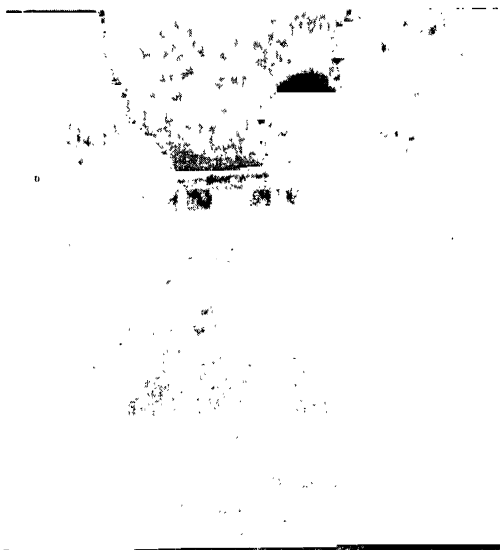
निशात बाग
पृष्ठ सं० ६३

यह झरना इतना प्रसिद्ध है कि अधिकांश यात्री, जो श्रीनगर के होटलों में टिकना पसन्द नहीं करते, यहीं तम्बू गाड़कर महीनों पड़े रहते हैं। इस झरने का पानी स्वास्थ्य के लिए अति उत्तम माना गया है। इस दोपहरी में हमने बहुत से लोगों को नहाते और पानी भरते देखा। कहा जाता है कि पहले काश्मीर-नरेश के पीने के लिए इसी झरने से पानी जाता था। वर्तमान युवराज इस झरने का पानी पीते हैं या नहीं, पता नहीं।

झरने के सामने शालिमार बाग की तरह एक बाग बनवाया गया है। उसी प्रकार फल-फूल के पेड़ लगाये गये हैं। पानी संगमूसा के नल से उछलता हुआ गिरता है। इसी नल के पास एक कुण्ड है। इसमें दो नल लगे हैं। एक नल का पानी डाक बंगले की ओर जाता है और दूसरा चहार दीवारी से बाहर निकलकर बहता है। यहीं यात्री लोग पानी लेते हैं और स्नान करते हैं। एक सज्जन ने, जो काश्मीरी थे, इस चश्मे की तारीफ में फरमाया कि इसका पानी सेहत के लिए बहुत फायदेमन्द है। पेचिस, कब्ज और पेट की तमाम बिमारियों के लिए इसका पानी दवा की तरह फायदा करता है। यह बात अपने आप में कहाँ तक सही है, यह तो नहीं मालूम, लेकिन यहाँ का वातावरण अवश्य ऐसा है कि तम्बू गाड़कर निछद्म का आनन्द लिया जा सकता है। आस पास न मकान है और न शोरगुल। जब जी चाहे झरने में नहाइये, जब चाहे डल में तैरिये। फलों का सेवन करिये, ताजा पानी पीजिये और १०-२० पौण्ड वजन बढ़ाकर घर वापस चले आइये। इससे अधिक मनुष्य को क्या चाहिए ?

मुगल बागों की सैर कर जब हम होटल वापस आये, उस समय लगभग एक बज चुका था। भूख जोरों से लगी हुई थी। और दिनों की अपेक्षा उस दिन हमने ऐसा डटकर भोजन किया कि खाट पर लेटते ही नींद आ गयी। जब आँखें खुलीं तो देखा—चार बज चुके थे। रामदास चाय बनाने की तैय्यारी कर रहा था। स्टोव की सों-सों आवाज से सभी की नींद खुल गयी। घड़ी की ओर नजर पड़ते ही बनर्जी बाबू चौंककर उठ बैठे और कहा—गजब हो गया। अभी चाय पीने की तैयारी कर रहे हो। जल्दी करो।

जब तक हम उनका मतलब समझ पायें, तब तक वे गुसलखाने की ओर बढ़ गये थे। उनके आने पर ज्ञात हुआ कि आज नसीम बाग, डल और नागिन झील चलना है। यहाँ एक बात बता देना आवश्यक समझता हूँ कि बनर्जी साहब काश्मीर भ्रमण करने के उद्देश्य से हमारे साथ नहीं आये हैं, बल्कि उनका इरादा पहल गाँव में रहकर सेहत बनाने का रहा। महज हम लोगों की इच्छापूर्ति के लिए वे श्रीनगर में ठहरे हुए हैं। यही वजह है कि सभी स्थानों को झटपट दिखाकर यहाँ से विदा लेना चाहते हैं, ताकि हम यह शिकायत न कर सकें कि हम लोगों ने अमुक स्थान नहीं देखा।

होटल से निकलकर हमने एक शिकारा ठीक किया। शिकारा के सम्बन्ध में सारी बातें पहले बता चुका हूँ। यहाँ प्रसंग वश उसके किराये के बारे में उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ कि यह किराया स्थायी रहेगा अथवा इसमें कम-बेशी हो सकती है, कहा नहीं जा सकता।

१—शिकारा के द्वारा डल झील का आनन्द लेते हुए अगर आप नसीम

बाग, निशात बाग, शालिमार बाग और नागिन झील देखना चाहें तो २।७५ न० पै० चार्ज देना पड़ेगा।

२—डल झील के सैर के लिए १।७५ नये पैसे।

३—दो घण्टे के लिए १।२५ नये पैसे। चार घण्टे के लिए लगभग २ रुपया। पूरे आठ घण्टे के लिए २।७५ नया पैसा सरकारी रेट है। अब आपकी इच्छा है कि आप मोल चाल कर कम में सौदा पटा लें या रईसी दिखाने के लिए ५ रुपया इनाम दे डालें।

४—गार्गीबल तक आने-जाने का १।२५ न० पै० चार्ज है। एक दृष्टि से किराया ठीक ही है।

तांगों का किराया अवश्य अधिक है और इतना अधिक है कि अकेले आदमी का सफर करना नामुमकिन है। अगर एक साथ तीन या चार रहें तो कुछ सस्ता पड़ सकता है, परन्तु तांगे में सफर का मजा नहीं मिलता। यह इसलिए लिख रहा हूँ कि शहर के भीतर एकबार म्यूजियम देखने के लिए मैं और इतिहासज्ञ गये थे। जहाँ शिकारा न जा सके वहाँ ताँगे से सफर किया जा सकता है।

सौभाग्य से कल वाला शिकारा हमें मिल गया। हमें देखते ही उसने पहचान लिया। अमीरा कदल से कुछ दूर बहाव में हमारा शिकारा आगे बढ़ा, फिर दायीं ओर मुड़ गया। यह वास्तव में झेलम नदी नहीं है, एक नहर है। इस नहर से डल झील और झेलम का सम्बन्ध है। इसी नहर के द्वारा झेलम का पानी डल झील में जाता है। इस ओर काश्मीरी मल्लाहों की बस्तियाँ हैं। चिनार बाग के पास आते ही जलधारा दो भागों में विभक्त हो जाती है। आप किसी भी रास्ते से डल झील में प्रवेश कर सकते हैं।

अगर आगे मेहराब के पास भीड़ देखें तो चिनार बाग के पास रुककर थोड़ा आनन्द ले सकते हैं, वर्ना आगे डल गेट के पास जाकर ठहर जाना पड़ेगा। जब कुछ शिकारा यहाँ इकट्ठे हो जाते हैं तब डल का दरवाजा खुलता है, ताकि बाहर खड़े शिकारे झील के भीतर प्रवेश कर जायँ। लेकिन जिस वक्त फाटक खुले उस वक्त धारा से दूर हटकर रहने में ही कल्याण है, वर्ना झटका खा जाने का डर रहता है।

धीरे-धीरे डलगेट खुला, अन्दर की किश्तियाँ बाहर आ गयीं और इसके बाद हम भीतर चले गये। भीतर दो बड़े दरवाजों के बीच एक जलाशय है। यह जलाशय ३०० फुट लम्बा ६० फुट चौड़ा है। इसके आगे डल झील है अभी यहाँ रुकना है क्योंकि आगे का दरवाजा डल का पानी रोके हुए है। जब सभी शिकारे इस जलाशय में आ जाते हैं तब पीछे का दरवाजा बन्द कर दिया जाता है और तब सामने का दरवाजा खोला जाता है। डल झील का धरातल झेलम से ५—६ फुट ऊँचा है, इसलिए यह कार्यवाही करनी पड़ती है ताकि डल का अस्तित्व बना रहे।

डल झील

धीरे-धीरे डल झील का गेट खुला। एक ही झोंके में पानी धीरे-धीरे इस जलाशय में भरने लगा और किश्तियाँ ऊपर उठने लगीं, फिर डल का पूरा दरवाजा खोल दिया गया। ज्योंही जलाशय का लेबिल डल झील के बराबर हो गया त्योंही एक-एक कर किश्तियाँ आगे बढ़ने लगीं और एक ही झोंक में हम डल के भीतर आ गये। इधर झेलम में जाने वाली

किश्तियाँ जलाशय में प्रवेश करने लगीं, उधर आने वालों के लिए पुनः यही क्रिया दुहरानी पड़ी।

झेलम में हाउस बोटों की संख्या नहीं के बराबर है। डल में इतने हाउस बोट हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। शिकारों का तो मेला लगा हुआ है। चारों तरफ लोग जीवन का आनन्द उठा रहे थे। कई हाउस बोटों से लोग नीचे हैडर मारकर कूद रहे थे। इनमें अधिकतर योरोपियन तथा गुजराती थे। लखनऊ के तरकारी वाले जैसे अपने ठेले पर एक दर्जन तरकारियाँ लिए गली-गली चक्कर काटते हैं, ठीक उसी प्रकार यहाँ शिकारों में टमाटर, कद्दू, तरबूज, भुट्टा, नाशपाती, बगुशा, अखरोट और बुखारा लिए काश्मीरी मल्लाह हर शिकारा तथा हाउस बोट के पास चक्कर काटते नजर आये।

इस झील के तीन भाग हैं। एक रैनवारी और नसीम बाग के बीच का इलाका, दूसरा नसीम बाग और शालिमार बाग के बीच का इलाका। इस इलाके में स्वर्ण लंका नामक एक टापू है। तीसरा शंकराचार्य पर्वत तथा नसीम बाग के बीच का इलाका। इस इलाके में रूपलंका नामक टापू है। इसके अलावा दो बड़े-बड़े बगीचे हैं और कबूतर खाना नामक एक और टापू है।

डल के बीच का हिस्सा काफी साफ है। किनारे की तरफ काई और सेवार हैं। कमल के फूलों के बारे में कुछ कहना ही व्यर्थ है। इतने ऊँचे-ऊँचे हैं कि कहीं-कहीं शिकारे की चोटी से बातें कर सकते हैं। जिराफ की तरह पानी से गर्दन निकाले हवा में झूम रहे थे। कमल फूलों

का वास्तविक आनन्द तो हजरतबल और शालिमार बाग के बीच देखने में आता है। यहाँ आने पर ऐसा लगता है, मानों डल झील कमल के पत्तों की साड़ी पहने इठला रही है और उसके ऊपर कमल के खिले फूल ऐसे लगते हैं जैसे उस पर कमल के फूल टांक दिये गये हैं। हवा में थिरकते हुए पत्तों और फूलों ने एक ऐसी समा बाँध रखी थी जिसका वर्णन कवित्वमय भाषा में ही किया जा सकता है।

इन्सान के जिस्म में जितने अङ्ग हैं, उनमें ये आँखें ही ऐसी हैं जो कभी तृप्त नहीं होतीं और न थकती हैं। आँखों की तृप्ति के लिए मनुष्य देशाटन करता है, सुन्दर रूप के लिए दीवाना रहता है, सौन्दर्य की खोज करते-करते वह कवि बन जाता है और फिर भी अतृप्त बना रहता है। आँखों की तृप्ति से ही हृदय तृप्त होता है और जब हृदय तृप्त हो उठता है तब वह परमानन्द मिलता है जिसकी तलाश में जीवन भर इन्सान अनेक कष्ट सहते हुए गिरते-पड़ते अपने मंजिल की ओर बढ़ता रहता है।

देशाटन से क्या मिलता है, तीर्थ भ्रमण से कौन सा स्वर्ग मिल जाता है ? तर्क से समझिये तो कुछ भी नहीं। परमानन्द और शान्ति ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है और यही है—मानव मुक्ति का मार्ग। इसे आप स्वर्ग की संज्ञा दे लें या चिर शान्ति की। अन्तर केवल भाषा या शब्दों का है, पर अर्थ एक ही है। शायद इसीलिए प्राचीन काल के ऋषि मुनि इन गुफाओं में, इन दुर्गम पहाड़ियों पर और इन जंगलों तथा सरोवरोंके निकट तपस्या करते थे। इसलिए नहीं कि उन्हें स्वर्ग जाने की इच्छा थी, बल्कि उस ज्ञान की खोज में वे बावले रहते थे जिसे सांसारिक बन्धनों में

जकड़ा हुआ मानव नहीं पाता। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, अच्छाई-बुराई और अपना-पराया की व्याख्या उन्हीं साधनों से हुई है। साधारण मानव के लिए यह साधना ईर्ष्या की वस्तु बन गयो। यही कारण है कि शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले महात्मा बन गये और अतृप्त मानव केवल मानव रह गया।

केवल मैं ही नहीं, जो कोई यहाँ आयेगा, उसके मन में यही भावना उत्पन्न होगी और उसे शायद कोई चाह नहीं रहेगी। ऊपर जितना जाइये, उतना ही आनन्द है और नीचे नरक। कहा जाता है कि कैप्टन हिलारी जब एवरेस्ट के शिखर पर चढ़ गया था, तब उसने ऐसी तृप्ति अनुभव की कि विषय-वासना की भावना को भी भूल गया। उसका कहना था कि यहाँ वे भावनाएँ मन में जाग्रत नहीं होतीं। जीवन के घिनौने छल-कपट से दूर रहकर साधना करनेवालों की देन के कारण आज भारत का मस्तक संसार के सम्मुख ऊँचा है। वर्तमान युग की देन क्या है? परमाणु बम, हाइ-ड्रोजन बम और क्षेप्यास्त्र। मानव-संहारक जितने भी अस्त्र बन सकते हैं, बनाये जा रहे हैं, पर इन आविष्कारकों से पूछिये कि मानव-कल्याण के लिए आपने क्या किया है!

डल झील में शिकारा पर टहलते-टहलते अगर आपकी तबीयत घबड़ा जाय तो नेहरू पार्क के पहले एक पार्क है, उसमें चले जाइये। यहाँ एक रेस्तराँ है। यहाँ चाय का आर्डर देकर आराम से डल की बहार देखिये। यहाँ डल का दृश्य और भी मनोरम लगता है। एक फ्रांसीसी दम्पत्ति ने यहाँ तक कहा कि इस झील के बीच यह बाग, हमें पेरिस की सीन नदी के किनारे के तुलेरीज गार्डेन की याद दिलाता है।

पेरिस तो मैं गया नहीं, परन्तु बचपन में, इतिहास में और लोगों के यात्रा वर्णनों में पढ़ चुका हूँ कि पेरिस में पार्कों की कमी नहीं है। इस समय फ्रांसीसी दम्पत्ति की यह उपमा सुनकर प्रसन्नता हुई। कम से कम एक ऐसा यात्री भी मिला जो भारत के स्विटजरलैण्ड की, पेरिस के एक अञ्चल से तुलना तो करता है।

हर मार्च में कमल फूलों की नव-बहार का आनन्द लेने के लिए यहाँ एक उत्सव आयोजित किया जाता है। उस दिन काश्मीर के निवासी इस उत्सव को बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। श्रीनगर के अधिकांश मेले इसी झील के किनारे लगते हैं।

अशोक ने अगर श्रीनगर को राजधानी का रूप दिया तो मुगल सम्राट ने इसे आरामगाह बनाया। केवल अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने ही नहीं, बल्कि दाराशिकोह ने भी श्रीनगर के सौन्दर्य को और भी रंगीन बनाने के लिए झील के मध्य में द्वीप बनवाया था। उन दिनों वह काश्मीर का सूबेदार था। जब कभी वह काश्मीर आता था तब इसी द्वीप में डेरा जमाता था।

गर्मी के दिनों में लोग शिकारा पर भ्रमण करते हैं, हाउसबोटों में आराम करते हैं और जाड़े के दिनों में यहाँ स्केटिंग करते हैं। डल का उपयोग कितने ढंग से किया जाता है, इसीसे समझा जा सकता है।

तैरते हुए खेत

डल में एक और अद्भुत दृश्य देखने में आता है। वह है—तैरते हुए

नेहरू पार्क
पृष्ठ सं० ७१
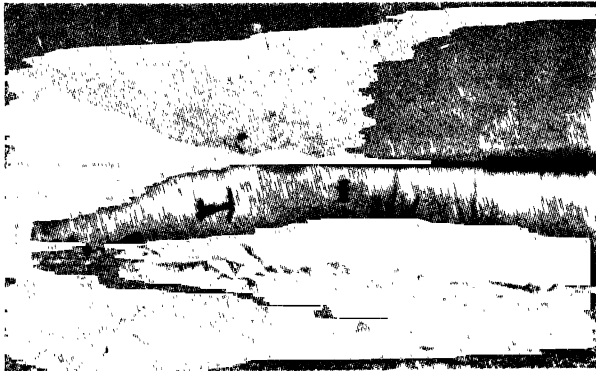
वूलर भील का एक दृश्य पृ० सं० ८१

खेत। घास-फूस का एक बड़ा पुलिन्दा बनाकर उस पर मिट्टी डाल दी जाती है, इन्हीं खेतों में काश्मीरी लोग तरह-तरह की तरकारियों की खेती करते हैं। इन खेतों को लोग एक जगह से दूसरी जगह हटा ले जाते हैं और चोरी भी करते हैं। अभ्यस्त लोग बिना भय-संकोच के इस पर आसानी से चढ़ जाते हैं। एक बार चढ़ते समय पैर डगमगाता है, पर डूबता नहीं। निस्सन्देह यह एक अद्भुत दृश्य था हमारे लिए। ये खेत १० फुट लम्बे १० फुट चौड़े होते हैं।

धीरे-धीरे सूर्य पहाड़ों की ओट में छिप गया और चारों तरफ अन्धेरा छा गया। सूर्यास्त के समय डल का सौन्दर्य इतना अपूर्व लग रहा था कि हम रेस्तराँ में प्याले पर प्याला चाय पीते ही रह गये। कहाँ हम यह प्रोग्राम बनाकर आये थे कि आज डल, नसीम बाग और नागिन झील एक साथ देखेंगे, वहाँ केवल डल का आनन्द लेने में इतना समय लग गया कि बरबस वापस आना पड़ा।

वापसी के समय चारो तरफ असीम शान्ति छायी हुई थी। केवल चप्पुओं के गिरने की आवाज सुनाई दे रही थी। कभी-कभी जब बगल से कोई तेज शिकारा गुजरता था तब ऐसा लगता था कि कहीं वह या हम उससे जाकर टकरा न जायँ। आगे नेहरू पार्क दीवाली सा जशन मना रहा था। यहाँ बहुत से लोग घूम फिर रहे थे। बच्चे किलकारियाँ मारते हुए दौड़ रहे थे। रंग-बिरंगे फूलों का सौन्दर्य रात के समय कितना सुन्दर लगता है, इसका अनुभव बिना यहाँ आये, नहीं किया जा सकता। रंग-बिरंगे फूल, घास पर बैठे हुए दम्पतियों का कल्लोल, मखमली घास

पर बच्चों की उधमबाजी और खम्भों पर से आती हुई रंगीन रोशनी से कोह-काफ की कल्पना होने लगती है। कोहकाफ है या नहीं और है तो कहाँ है, पता नहीं। लेकिन इन मादक दृश्यों को देखकर ही कोहकाफ की सृष्टि हुई होगी।

नागिन लेक

दूसरे दिन हम पुनः डल झील से होते हुए नागिन लेक की ओर रवाना हुए। एक दृष्टि से हम अवश्य सौभाग्यशाली रहे कि शिकारे की सफर से मुगलबागों को नहीं देखा, वर्ना काफी पैदल दौड़ना पड़ता और डल का आनन्द न ले पाते। इस प्रकार डल का कई बार भ्रमण करना पड़ता।

नेहरू पार्क के आगे बढ़ने पर हमारे माझी ने पूछा कि पहले नागिन लेक जाइयेगा या नसीम बाग ?

हमने उसे बताया, पहले जो स्थान नजदीक है वहीं ले चलो। इस आज्ञा को सुनकर वह हमें नागिन लेक की ओर ले चलने के लिए बाँयीं ओर मोड़कर तेजी से आगे बढ़ने लगा। चूँकि कल हम डल अच्छी तरह देख चुके थे, इसलिए आराम से भीतर लेटे हुए थे। आसानी से जो कुछ देखा जा सकता था, लेटे-लेटे देख रहे थे।

देखते-देखते एक पुल के नीचे से हम नागिन लेक में चले आये। इस झील का पानी देखते ही हृदय प्रफुल्लित हो उठा। डल और झेलम के पानी से काफी साफ। नीचे झाँकिये तो दूर तक का दृश्य देखने में आता है।

इस झील में बहुत से लोग तैरते नजर आये। बीच में तीन बड़ी

नौकाएँ लगी हुई थीं। कुछ लोग उस पर बैठे धूप का आनन्द ले रहे थे और कुछ लोग छलांग मारकर नीचे पानी में कूद रहे थे। किनारे-किनारे अनेक हाउस बोट और शिकारे लगे हुए थे। कुछ लोग ट्यूब के सहारे हल्के-हल्के ढंग से तैर रहे थे।

स्वाभाविक है—नाऊ को देखकर हजामत बढ़ जाती है। हम लोगों को भी नहाने की इच्छा हुई, पर सवाल यह उठा कि क्या पहनकर नहायें। हमारे इस विचार को सुनकर बनर्जी बाबू मुस्कराये। फिर स्वयं ही बोले— नागिन लेक में नहाने के लिए ही लोग आते हैं। जितने लोग इन हाउस बोटों में ठहरे हैं, वे सभी जल क्रीड़ा करने के उद्देश्य से...

तभी हमने आश्चर्य से देखा एक तेज स्टीमर तेजी से आगे बढ़ी चली आ रही है और उसके पीछे बँधी रस्सी का सहारा लिए एक अंग्रेज युवती 'सर्फ राइडिंग' कर रही है। इस दृश्य को देखकर हम नहाने की कौन कहे, अपने आप को भूल गये।

गोरा रँग, छरहरा वदन, बड़ी अदा से ६० अंश का कोण बनाकर वह एक ओर झुकी हुई स्टीमर के पीछे बँधी रस्सी को पकड़े थी। गजब था उसका रूप और गजब था उसका सौन्दर्य। पानी में एक तूफान आया। और सरसराती हुई वह हमारी आँखों के सामने से निकल गयी। इस तरह क्रमशः एक-दो तीन-चार मोटर वोटें सरसराती आयीं और चली गयीं।

जीवन का वास्तविक आनन्द अंग्रेज ही उठाते हैं। जीवन के हर क्षेत्र में वे समान अधिकार रखते हैं। कहा जाता है कि उनके लिए यह व्यवस्था यहाँ की गयी है, ताकि वे अधिक से अधिक संख्या में यहाँ आयें और

आनन्द लें, गो कि यह व्यवस्था केवल अंग्रेजों के लिए ही नहीं है। हर कोई, जिसे शौक हो, 'सर्फ राइडिंग' कर सकता है, परन्तु उतनी हिम्मत, अभ्यास और सन्तुलन रखना आवश्यक है।

काफी देर तक इन दृश्यों को देखने के पश्चात् जब लोगों ने वापस चलने के लिए कहा तो बनर्जी बाबू ने पूछा—"नहाओगे नहीं ?"

इतना सुनने की देर थी कि लोग चटपट बदन के कपड़े उतारकर पानी में कूद पड़े। पानी में कूदते ही ऐसा मालूम पड़ा कि सारे शरीर का रक्त जमकर बर्फ बन गया है। शिकारे में लोग गर्मी महसूस कर रहे थे और पानी में उतरते दिमाग तर हो गया। लेकिन यह स्थिति थोड़ी देर तक रही। ज्यों ही लोग तैरने में दत्तचित्त हो गये, त्यों ही धीरे-धीरे ठण्डे जल के अभ्यस्त हो गये। बनर्जी साहब तथा मैं पानी में नहीं उतरे। केवल प्रदीपजी, इतिहासज्ञ और रामदास पानी में तैर रहे थे। एक बार इन लोगों ने चाहा कि चलकर बड़ी नौका पर से छलांग लगायें, लेकिन इतिहासज्ञ काफी थक गये थे और उन्हें वहाँ तक जाने की हिम्मत नहीं हुई, इसलिए वापस शिकारे में चले आये। जब साथ तैर रहे हैं तब अकेले जाना अच्छा नहीं लगा।

नसीम बाग

नागिन लेक से निकलकर हम पुनः किनारे-किनारे आगे बढ़े। आस-पास छोटे गाँव दिखाई पड़े। झील के किनारे-किनारे जो राजपथ नसीम बाग तक गया है, उसके दोनों किनारे चिनार के वृक्ष पंक्तिवार खड़े थे। ठीक काश्मीरियों के रंग की तरह इनके तने का रंग था। दूसरी ओर

कमल के फूल डल के ऊपर बिछे हुए थे। कुछ दूर आगे बढ़ने पर 'हजरत बल' ग्राम आया। यह मुसलमानों का पवित्र तीर्थ स्थान है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में कोई मुसलमान अरब से हजरत मुहम्मद साहब की दाढ़ी का एक बाल लाया था। उसकी यहाँ जियारत होती है। ईद के दिन यहाँ उनके सम्मान में मेला लगता है। कुछ दूर और आगे बढ़ने पर दाहिने हाथ एक छोटा टापू दिखाई दिया। इसे सोन लंका कहते हैं। इसमें चिनार के कई वृक्ष तथा बैठने लायक कई बेंच हैं।

और कुछ दूर आगे बढ़ने पर हमें नसीम बाग मिला। किनारे शिकारा रोक कर हम बाग में गये। चिनार के वृक्षों का एक अच्छा खासा बाग है। इस बाग का दूसरा नाम है—उषा कालीन वायु का बाग अर्थात् ताजी हवा का बाग। यह बाग निशात के अपर दिशा में स्थित है। इस बाग का निर्माण मुगल सम्राट अकबर ने करवाया है। यहाँ से डल झील और पहाड़ का सुन्दर दृश्य देखने में आता है। इस बाग में अधिकतर ऐसे लोग ठहरते हैं जो स्वास्थ्य-लाभ की दृष्टि से यहाँ आते हैं। इस वक्त १५-१६ कैम्प लगे हुए थे। चारों तरफ का वातावरण शान्त था। ताजी हवा का बाग शायद इसलिए कहते हैं कि यह स्थान चारों तरफ खुला हुआ है और एक ओर बाग की शुद्ध हवा और दूसरी ओर डल झील की हवा यहाँ ठहरने वालों को अनायास मिलती रहती है।

लगभग साढ़े ग्यारह बज चुके थे। भूख मालूम पड़ रही थी, इसलिए हम झटपट वहाँ से चल पड़े। श्रीनगर में जब से आया हूँ, भूख सताने लगी है और आवश्यकता से अधिक खाने भी लगा हूँ। इस प्रकार के चावल

और फल अगर जीवन भर मिलते रहें तो कभी डाक्टरों का दरवाज़ा न खटखटाना पड़े। लेकिन प्रकृति अपनी कृपा सभी जगह एक ढंग की नहीं करती। अगर वह मैदानी इलाकों में यह सुभीता दे देती तो फिर काश्मीर कौन आता ?

झीलों की दुनिया में

●

खिलनमर्ग
पृ० सं० ६७

टनमर्ग
पृष्ठ सं० ६४
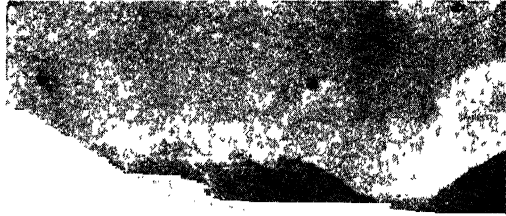
डल झील के समान काश्मीर की सबसे बड़ी झील बुलर झील है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि बुलर झील से बड़ी एशिया में कोई झील नहीं है।

काश्मीर में जितनी झीलें हैं, सभी में एक न एक विशेषता है। डल झील सैलानियों के सैर के लिए है तो नागिन 'सर्फ राइडिंग' और स्नान के लिये प्रसिद्ध है। मानसबल अपनी गंभीरता के लिए प्रसिद्ध है तो आंसार झील कमल के फूलों के लिए।

नागिन झील से वापस आने के बाद हम उस दिन कहीं नहीं गये। कारण इसके बाद का प्रोग्राम हमारा बुलर झील देखने का था। बुलर झील जाने के लिए सबसे सुगम मार्ग सरकारी बस ही है, जो सुबह नौ बजे छूटती है, और शाम तक वापस ले आती है। किराया फी आदमी ४।२५ नये पैसे।

मंगलवार के दिन हम बुलर झील की ओर रवाना हुए। बस में हम पांचों के अलावा अन्य बहुत से यात्री थे। ये सभी भारत के विभिन्न प्रदेशों के निवासी थे। तरह-तरह के थे, इनके पहनावे और बोलियाँ।

आंचार झील

श्रीनगर के विभिन्न मार्गों से गुजरती हुई बस उत्तर दिशा की ओर चल पड़ी। चारों तरफ हरियाली ही हरियाली थी। और थे, छोटे-छोटे ग्राम। श्रीनगर आने के बाद से हमेशा एक बात सोचता रहता हूँ कि अगर यहाँ चिनार वृक्षों की इतनी अधिकता न होती तो काश्मीर का दृश्य कैसा लगता? उस समय श्रीनगर का रूप संभवतः उस सुन्दरी विधवा की भाँति होती जो सफेद वस्त्रों से अपने को लपेटे शृङ्गार-हीन जीवन व्यतीत करती है!

"यह देखिये, यह आंचार झील है।" सहसा बस में बैठे एक पंजाबी सज्जन ने कहा।

अनुरोध करने पर बस रुक गयी और हम सब उस झील को एक टक देखने लगे। डल झील में तो थोड़े से कमल थे और यहाँ तो कमल के फूलों का जंगल है। तैरते खेतों पर उपजे फल और तरकारियों की बहार अगर कहीं है तो 'आंचार' में ही है। यह झील है, यह बोध

नहीं होता। यह कमल के फूल-पत्ते और तैरते खेतों से ढँकी हुई है। केवल पंक्षियों की चहचहाहट और किनारे पर बेत के जंगलों से आती हुई सरसराहट ही यहाँ के शान्त वातावरण में कल्लोल उत्पन्न कर देती थी, वर्ना चारों ओर निस्तब्धता थी। शायद इसीलिए काश्मीरी लोग इसे अन्धी झील कहते हैं। कहते हैं कि अब दिन पर दिन यह झील छोटी होती जा रही है, क्योंकि सिन्ध नदी का नाला अपने साथ प्रति वर्ष मिट्टी लाकर इसकी सीमा को संकुचित बनाता जा रहा है। अगर यही हालत रही तो अगले १००—१५०वर्ष में आंचार का नामो-निशान मिट जायगा। तब न यहाँ मेले लगेगें और न यहाँ सैलानियों का दल आयेगा।

गांधार बल

श्रीनगर से १३ मील रास्ता तय करने के बाद गांधार बल आ पहुँचे। यह स्थान सिन्ध नाले के समीप है। शिकारी लोग यहाँ कैम्प लगाकर ठहरते हैं। स्वास्थ्य के लिए यहाँ का पानी लाभदायक माना जाता है।

बस पर बैठे एक सज्जन ने यहाँ तक कहा, कि यक्ष्मा के मरीज यहाँ आकर इसीलिए डेरा जमाते हैं कि यहाँ पानी पीकर स्वस्थ हो जायँ। काश्मीरी इस झील को अत्यन्त पवित्र मानते हैं। इसका पानी बिलकुल नीला और बर्फ की तरह ठण्डा है। फूलों का एक सुन्दर उपवन भी यहाँ है।

गांधार बल की एक खास विशेषता की ओर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं। वह यह कि यहाँ गर्मी के मौसम में योरोप आदि देशों से पक्षियों का दल आता है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि ये विदेशी पक्षी यहाँ ६ मास रहते हैं, फिर जब अधिक सर्दी पड़ने लगती है तब यहाँ से चले जाते हैं।

यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि गाँधारबल झेलम के किनारे नहीं, सिन्ध-गङ्गा के किनारे है। सिन्ध गङ्गा काश्मीर की एक प्रख्यात नदी है जो अमर नाथ पर्वत से निकली है। अधिकांश बड़े आदमी केवल चाय पीने के लिए गांधारबल तशरीफ ले आते हैं। कहा जाता है कि चाय पीने के लिए इससे उत्तम स्थान और कहीं नहीं है।

यहाँ से कुछ दूर आगे दाराशिकोह का बनवाया हुआ महलशाही है। गाँधारबल से २ मील पर खीरभवानी नामक एक मन्दिर है। यहाँ एक तालाब और मन्दिर है। काश्मीरी पण्डितों के लिए यह तीर्थ स्थान ही नहीं बल्कि भविष्य जानने का भी स्थान है। कहा जाता है कि इस तालाब का पानी भविष्य का संकेत देता है। यदा कदा इसका जल रंग बदलता रहता है। इसीसे काश्मीरी लोग देश का अच्छा-बुरा समझ पाते हैं।

मानस बल

गांधारबल से ७ मील और श्रीनगर से १८ मील दूर यह स्थान है। काश्मीर में जितनी झीलें हैं, उनमें सबसे गहरी तथा स्वच्छ यही झील है। झील के किनारे दो पड़ाव स्थल हैं। अगर काश्मीरो फूलों की वसन्तश्री देखना हो तो मानसबल देखना चाहिए। रेपसीड नामक पीले फूलों की मानों यहाँ खेती होती है। दूर जितनी दूर, निगाह उठाकर देखिये उतनी ही दूर तक रंग-बिरंगे फूल हैं। झील से सटी हुई एक पहाड़ी की ढलान है जो हीरे सी चमकती रहती है। फूलों की बहार, झील के किनारे-किनारे कमल-कुञ्जों की छटा और शिकारे में भ्रमण करते हुए यात्रियों का झुण्ड, इन सबका आनन्द लेना हो तो रेस्ट हाउस में एक प्याला चाय

का आर्डर देकर उसकी चुस्की लेते हुए आसानी से देखा जा सकता है। डल झील स्थित रेस्तरां से कहीं अधिक आनन्द मानसबल के इस रेस्ट हाउस में मिलेगा और डल से कहीं मनोरम दृश्य देखने में आयेगा।

इस झील के निकट एक गुफा में एक फकीर रहता था, जिसके कारण गुफा की प्रसिद्धि बढ़ गयी। अन्तिम समय में उसे पास के बाग में दफना दिया गया।

बुलर झील

मानसबल से हम ऊबड़-खाबड़ मार्ग तय करते हुए बुलर झील की ओर रवाना हुए। इस बार काफी लम्बा सफर रहा। वतलाब नामक स्थान पर बस के रुकते ही पता चला कि यहाँ बस १½ घण्टा रुकेगी। इससे बड़ी राहत मिली। हवाई जहाज से केवल नीचे की झलक दिखाई देती है, सौन्दर्य नहीं। फिर भी कहीं-कहीं हवाई जहाज से सफर करना जरूरी हो जाता है। प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेने के लिए १५—२० मिनट का समय काफी नहीं है। लेकिन जहाँ पाबन्दी हो, वहाँ सरसरी तौर पर देखने के अलावा और कोई चारा भी नहीं है। यही वजह है कि बुलर झील देखने के लिए जब डेढ़ घण्टे की छूट दी गयी तब सभी यात्री प्रसन्न हो उठे। बाद में ज्ञात हुआ कि सोपुर और यहाँ १¼-१½ घण्टे की छूट रहती ही है।

बुलर झील को अगर एक छोटा सागर मान लिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। यों इसे एशिया की एक सबसे बड़ी झील माना ही जाता है। यह झील १२ मील लम्बी और ५ मील चौड़ी है। कहा जाता है कि केवल गर्मी के मौसम में इसका विस्तार ७८ वर्ग मील रहता है

और बरसात के दिनों में तो यह १०० वर्ग मील तक फैल जाती है। स्मरण रखना चाहिए कि इस झील में पानी झेलम नदी से आता है। अनेक सैलानी लोग बस से न आकर शिकारा के द्वारा यहाँ आते हैं। इतना विस्तृत होने पर भी इसकी गहराई १५ फुट से अधिक कहीं नहीं है। पार्श्व भाग में ऊँची-ऊँची पर्वत श्रेणियाँ हरियाली लिए खड़ी हैं। इतिहास की अनुश्रुति है कि इस झील का प्राचीन नाम महापद्म सर है। महापद्म नाग के नाम पर इस झील का नाम पड़ा है। आठवीं शताब्दी में जब थांग देश में काश्मीर और चीन देश के राजा में मित्रता का सम्बन्ध हुआ था, तब भी इस झील का नाम महापद्म था। आगे चलकर इसका नाम उल्लोल सर हुआ और अब बिगड़कर बुलर बन गया। झेलम नदी श्रीनगर की ओर से आकर दूसरी ओर निकल गयी है। हिन्दुस्तान में शायद ही ऐसी कोई नदी होगी जो अपनी राह में एक झील को जन्म दे और अपने रास्ते चलती रहे। प्रदीपजी ने इस झील के सम्बन्ध में एक मनोरंजक बात बतायी। उन्होंने कहा कि जैन-उल-आब्दीन ने अपने जीवन काल में अपना स्मारक इस झील के बीच में बनवाने के लिए देश के प्रसिद्ध शिल्पियों को बुलवाया और एक सुन्दर भवन बनवाकर उसका नाम जैन लंका रखा। इसी झील के एक कोने में बडशाह ने एक मस्जिद बनवायी, जिसके खण्डहर आज भी मौजूद हैं। लेकिन भवन और मन्दिर पानी में समाप्त हो गये।

डा० स्मिथ को सन १८७४ ई० में इस टापू से एक प्राचीन शिला लेख प्राप्त हुआ था, जिस पर फारसी भाषा में जैन-उल-आब्दीन तथा सन् खुदे हुए थे।

बुलर झील के सम्बन्ध में इतिहासज्ञ ने एक ऐसी अद्‌भुत कहानी सुनायी जिसे, सुनकर हम चकित रह गये। उन्होंने कहा कि काश्मीर में झीलों की इतनी अधिकता क्यों है, क्या इस पर आप लोगों ने गौर किया है? हिन्दुस्तान में बहुत कम ऐसे इलाके होंगे, जहाँ के पर्वतीय अंचल में इतनी अधिक झीलें हों। नदी या झरना का होना स्वाभाविक है, पर इतनी झीलें क्यों है?

यह एक ऐसा प्रश्न था जिसका जवाब हमारे पास नहीं था। हमें चुप रहते देख वे पुनः बोल उठे—भूगर्भ शास्त्रियों का कथन है कि प्राचीन काल में अर्थात् तुषार युग में मनुष्य को हिमपात से लड़कर जीवित रहने के लिए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। जब उत्तर में हिम-पात होता था तब लोग काफिला बनाकर दक्षिण में आ जाते थे और जब दक्षिण में हिमपात शुरू हो जाता था तब उत्तर दिशा में चले जाते थे। यह घटना आदिम मानव के युग में हुई थी। भारत में ऐसी घटनाएं कब हुई थीं, ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता, क्योंकि यहाँ मानव अस्थियाँ प्राप्त नहीं हुई हैं। लेकिन उस युग में मानव द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले अस्त्र-शस्त्र अवश्य प्राप्त हुए हैं।

हिमालय का यह अञ्चल भी तुषार युग में हिमपात के अन्धड़ से आक्रान्त हुआ था। उसका प्रमाण है—अर्द्ध गोलाकार उपत्यका, लटकती हुई शाखा उपत्यका, मसृण पर्वत गात्र, मेष पृष्ठ की भाँति ढालुआ पर्वत, सीढ़ियों की तरह बने पर्वत आदि। आप अगर अमरनाथ जी की ओर जाइयेगा तो वहाँ भी ऐसे ही दृश्य देखने को मिलेगें। गुलमर्ग-खिलनमर्ग

में भी ऐसे दृश्यों की कमी नहीं है। अमरनाथ पर्वत अगर गुफा के रूप में बन गया है तो गुलमर्ग ग्राव रेखा के ऊपर स्थित है। इसी ग्राव रेखा के ऊपर 'गोल्फ' खेलने का विस्तृत मैदान है।

श्रीनगर की उपत्यका में किसी समय एक विराट सरोवर था। उसके अस्तित्व का प्रमाण मिल गया है, इस सरोवर के किनारे अनेक जंगली जानवर रहते थे। ज्यों-ज्यों सरोवर लुप्त होता गया, त्यों-त्यों जमीन खाली होती गयी। इन खाली जगहों में प्राचीन काल के पशुओं की अस्थियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ पहले जो सरोवर था, उसका नाम कारेवा था। वर्तमान काश्मीर की डल, बुलर, मानसबल और आँसार सभी झीलें लुप्त कारेवा सरोवर के टुकड़े हैं। श्रीनगर के समीप ही लुप्त सरोवर के बलुई जमीन के नीचे एक लुप्त वंश वाले प्राचीन हाथी का अवशेष मिला है। इस हाथी का वैज्ञानिक नाम है—'एलिफेस् हाई सुड्रिकास्'। अनुमान किया जाता है कि तुषार युग के प्रथम हिमपात के पश्चात् यह हाथी पञ्जाब की भूमि से अन्य जंगली जानवरों के साथ काश्मीर के इस सरोवर तक चला आया था। यहाँ स्मरण रखना होगा कि उन दिनों पीर पञ्जाल की चोटी इतनी ऊँची नहीं थी और उत्तर भारत के मैदानी इलाकों में अनेक स्तनपायी जानवर रहते थे। उत्तर भारत के इस लुप्त वंश वाले हाथी के निकटस्थ एक और हाथी की अस्थियाँ नर्मदा नदी के किनारे होशंगाबाद जिले में मिली हैं। इसकी अस्थियाँ कलकत्ता के जादूघर में आज भी मौजूद हैं।

कहा तो यहाँ तक जाता है कि द्वितीय हिमपात के समय हिमालय के साथ-साथ पीर पञ्जाल और वर्तमान सरोवर की भूमि ऊँची हो गयी थी।

सिर्फ यही नहीं, वैज्ञानिकों का यह भी मत है कि कारेवा सरोवर से ही झेलम नदी की उत्पत्ति हुई है। राजतरंगिणी में कहा गया है कि काश्यप नामक किसी योद्धा ने अपनी तलवार से इस सरोवर को काटकर झेलम को जन्म दिया था।

यद्यपि इतिहासज्ञ की बातें मेरी रुचि की नहीं थी, तथापि इसे अपनी डायरी में इसलिए नोट कर लिया ताकि और लोग इसे जान सकें।

सोपोर

बुलर के किनारे-किनारे हम सोपोर आये। यह वह ऐतिहासिक स्थान है जिसे पाकिस्तानियों के खूनी पंजों ने बुरी तरह नोच डाला था।

यहाँ एक घण्टे तक नाँगल नाला का प्राकृतिक दृश्य देखते रहे। यहीं भोजन-जलपान आदि कर हम बारामूला की ओर बढ़ गये। पिकनिक करने योग्य गुलमर्ग के बाद सोपोर सबसे दिव्य स्थान है।

बारामूला

श्रीनगर से ३५ मिल पश्चिम में यह स्थान है। यहाँ से पट्टन होते हुए सीधा रास्ता श्रीनगर चला गया है। बारामूला से एक रास्ता उड़ी की ओर और दूसरा गुलमर्ग की ओर भी गया है।

इस स्थान का पौराणिक महत्व है। कहा जाता है कि विष्णु ने यहीं बाराह के रूप में अवतार लिया था, इसलिए इस स्थान का नाम बाराह मूल (वारामूला) पड़ा। २६ अक्टूबर १९४७ ई० को पाकिस्तानी

लुटेरों ने इसे अपने कब्जे में ले लिया था और ८ नवम्बर १९४७ को पुनः भारतीय सिपाहियों ने इसे मुक्त कर लिया। यहाँ लकड़ी चीरने के कारखाने अधिक होने से, काष्ठ शिल्प के विक्रेताओं की दूकानें काफी हैं। डाक बंगला, पोस्ट आफिस आदि के अलावा अन्य सभी सुविधाएं प्राप्य हैं, जो किसी भी कसबे में आसानी से मिल जाती है।

चरागाहों की सैर

बुलर झील की परिक्रमा हमारे लिए मंहगी साबित हुई। प्रदीप जी तथा इतिहासज्ञ को सर्दी लग गयी और बनर्जी को मतली का दौरा आ गया। फलस्वरूप दो दिन हम श्रीनगर में आराम करने के बाद शुक्रवार के दिन गुलमर्ग की ओर रवाना हुए।

गुलमर्ग का किराया एक तरफ का १.२५ नये पैसे है और वापसी के लिए २.२५ नये पैसे। गुलमर्ग के किराये में दो भाग इसलिए किये गये हैं कि कुछ लोग गुलमर्ग जाकर वहीं ठहर जाते हैं, ताकि दिन भर गुलमर्ग का आनन्द लेकर दूसरे दिन खिलनमर्ग या अलपत्थर आदि स्थान देखने जायें।

ठीक साढ़े ६ बजे बस मागम होते हुए टनमर्ग पहुँच गयी। श्रीनगर से २५ मील पश्चिम में यह स्थान है। यहाँ से ४ मील पैदल या टट्टू पर गुलमर्ग की ढालुआ पहाड़ी पर चढ़ना पड़ता है। सरकारी रेट के अनुसार १.५० नये पैसे से लेकर १) तक में घोड़े मिलते हैं। चढ़ाई में कुछ अधिक देना पड़ता है, उतराई में महज .२५ नये पैसे की बचत हो जाती है। हमने ४ टट्टू किराये पर लिये। गुलमर्ग आते समय हम रामदास को श्रीनगर के होटल में छोड़ आये थे। क्योंकि हमारा प्रोग्राम खिलनमर्ग तथा गुलमर्ग के अन्य अँचलों को बहुत जल्दी में देखने का था।

चारों ओर घने चिनार और देवदार के वृक्ष मानों आपस में पंचशील की रक्षा करते हुए खड़े झूम रहे थे। इधर हमारा काफिला टट्टुओं पर धीरे-धीरे गुलमर्ग की ओर बढ़ रहा था। जीवन में कभी टट्टू पर सवारी करने का अवसर नहीं आया था, इसलिए कुछ अजीब सा लग रहा था। कुछ लोग पैदल ही चल रहे थे और रह-रहकर कमर पर हाथ रखकर दर्द मिटा रहे थे। लेकिन बलिहारी है, इन काश्मीरी टट्टुओं की, जो ऐसे सधे पैरों से चल रहे थे कि कहीं भी लड़खड़ाने का नाम नहीं ले रहे थे। अनेक मोड़ और चक्करों को पार करते हुए वे योगी की भाँति निस्पृह भाव से बढ़ते जा रहे थे। सबसे आगे वाले टट्टू का मालिक काश्मीरी भाषा में न जाने कौन-सा गीत गा रहा था, जिसकी आवाज दूर पहाड़ियों से टकराकर एक विचित्र संगीत की ध्वनि उत्पन्न कर रही थी। यात्रा में कष्ट अवश्य होता है, परन्तु आनन्द भी उतना ही मिलता है। टट्टू पर बैठने का अभ्यास न होने के कारण मैं कुछ तकलीफ जरूर महसूस कर रहा था, परन्तु अपने चारों तरफ प्रकृति की छटा देखकर मैं यह तकलीफ भूल

गया। दुनिया इतनी सुन्दर है, इसका सर्वप्रथम ज्ञान इन पहाड़ियों को देखकर हुआ। एक ओर आकाश से बातें करता हुआ पर्वत था तो दूसरी ओर अतल गहराई। निगाह फेरिये तो भय से कलेजा धकधक करने लगता है, लेकिन इन मूक पशुओं को इसकी रंचमात्र चिन्ता नहीं थी। ज्यों-ज्यों हम ऊपर बढ़ते गये त्यों-त्यों टनमर्ग का आकार लघु होता गया। आखिर वह हमें बच्चे का खिलौना-सा प्रतीत हुआ।

आखिर हम धीरे-धीरे गुलमर्ग पहुँच गये। यहाँ टूरिस्ट आफिस की 'हट' में जाकर ठहरे। गुलमर्ग में डाक बंगला तो है ही और कुछ होटल भी खुल गये हैं, परन्तु टूटिस्ट आफिस की हट में कुछ अधिक सहूलियत प्राप्त है।

गुलमर्ग का प्राचीन नाम गौरीमर्ग है। कहा जाता है कि सुलतान यूसुफशाह ने प्राचीन नाम को बदलकर गुलमर्ग रख दिया। जहाँगीर फूलों से बड़ा प्रेम रखता था। यहीं उसने एकबार २१ प्रकार के फूल संग्रह किये थे। गुलमर्ग का सबसे अधिक आकर्षण स्थल है—घास का मखमली विस्तर लगाये विस्तृत मैदान। पहाड़ की ढालों पर सैनिकों की तरह खड़े वृक्ष जो एक दूसरे से काफी दूर-दूर थे। पाइन वृक्षों की सुन्दर झाड़ियाँ और अगणित फूलों का बाजार लगा था। पोलो ग्राउण्ड का विस्तृत मैदान किसी भी व्यक्ति के लिए वही महत्व रखता है जो धार्मिक व्यक्ति के लिए देव मन्दिर रखता है। लोग यहाँ वैडमिण्टन और टेबुल टेनिस खेल रहे थे। हमें बताया गया कि पाकिस्तानी हमले के कारण गुलमर्ग का सौन्दर्य नष्ट हो चुका था। यहाँ तक कि पोलो ग्राउण्ड चौपट हो चुका था, परन्तु जब विदेशी यात्री काफी तादाद में जाड़े के मौसम

में भी गुलमर्ग में पोलो खेलने के लिए आने लगे तब वर्तमान सरकार ने गुलमर्ग के पोलो ग्राउण्ड के सौन्दर्य को स्थायी बनाने में काफी व्यय किया। फिर भी गुलमर्ग में पुरानी रौनक नहीं आ सकी। पहले यहाँ बहुत बड़ा बाजार था। अब यहाँ कुछ भी नहीं है। लेकिन इस वक्त जो है, वह कुछ साल पहले नहीं था। कहने का मतलब मौजूदा सरकार काश्मीर को पुनः यात्रियों के लिए स्वर्ग भूमि बनाने के लिए जो तोड़ परिश्रम कर रही है, कारण यात्रियों के माध्यम से सरकार को पर्याप्त आय होती है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि पर्यटकों के आगमन के कारण ही काश्मीर काश्मीर है।

गुलमर्ग का सबसे जानदार इलाका है—आउटर सरकूलर रोड जो एक मील लम्बा है। इस सड़क पर आते ही ऐसा अनुभव होता है, मानों हम किसी दूसरी दुनिया में आ गये हैं, जहाँ न शोक है न दुःख। स्वर्ग किसी ने अपनी आँखों से नहीं देखा है, परन्तु इस धरती पर प्रकृति ने उसकी कल्पना के अनुसार स्वर्ग के अनेक टुकड़े बना दिये हैं। काश्मीर को भारत का स्विटजरलैण्ड कहा गया है और भारत का भू स्वर्ग भी। गुलमर्ग आने पर सचमुच यही अनुभव होता है, ईर्ष्या होती है, यहाँ की छटा देखकर और हर्ष होता है, यह जानकर कि यह अपना ही देश है।

नीले आसमान में जिस प्रकार तारे चमकते हैं, ठीक उसी प्रकार घास के हरे मैदान में कुछ सफेद भेंड़ें चरती हुई नजर आयीं। कुछ लोग, जिनमें कई विदेशी थे, मैदान में घुड़दौड़ कर रहे थे। एक बंगाली सज्जन घास के मैदान में लेटे-लेटे पत्नी के साथ रहस्यालाप कर रहे थे।

गुलमर्ग में
पिकनिक का
आनन्द
पृ० सं० ६३
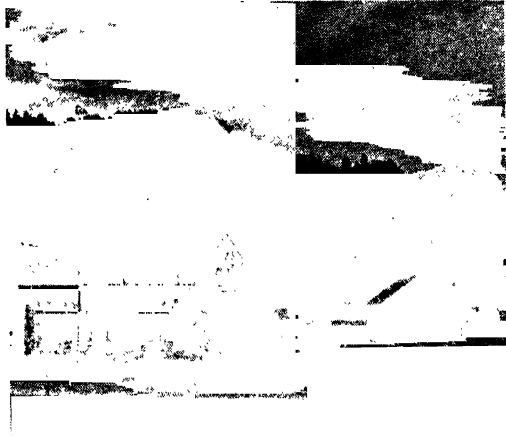
गुलमर्ग
पृ० सं० ६३

खिलनमर्ग

उस दिन हम केवल गुलमर्ग और आस पास के स्थान देखते रहे। दूसरे दिन खिलनमर्ग और अलपत्थर जाने का निश्चय किया। ठीक सात बजे के लगभग हम जलपान कर खिलनमर्ग को रवाना हो गये। खिलन-मर्ग, गुलमर्ग से ३½ मील दूर है। काश्मीरी भाषा में मर्ग को चारागाह कहा जाता है। साधारण अर्थ में गुलमर्ग का अर्थ फूलों का मैदान, फूलों की घाटी होता है, लेकिन कुछ लोग इसे अर्धपुष्पित चारागाह कहते हैं। खिलनमर्ग का अर्थ है—बकरों का चारागाह। इन इलाकों का नाम चरा-गाह रखने का एक मात्र कारण है—घास के लम्बे-लम्बे मैदानों का होना।

खिलनमर्ग तो बिलकुल चारागाह है। चारों तरफ घना जंगल है, रास्ते में कहीं-कहीं हमें पेड़ों की टहनियाँ हटाकर आना पड़ा है। रास्ता बीहड़ होने के अलावा कठिनाइयों से भरा है। आस पास गाँव की कौन कहे, इन्सान की शक्ल तक नहीं दिखाई देती। केवल मौत सा सन्नाटा लिए हुए यह स्थान अपनी किस खूबी के लिए प्रसिद्ध है, कह नहीं सकता।

खिलनमर्ग जब पहुँचे उस समय आठ बज चुके थे। यह स्थान समुद्र से ११००० फुट की ऊँचाई पर है। जिस प्रकार गुलमर्ग के रास्ते से टनमर्ग एक खिलौना सा लगता है ठीक उसी प्रकार यहाँ से गुलमर्ग भी छोटा-सा दिखाई दे रहा था। यहाँ एक पञ्जाबी सज्जन का होटल है और वह भी ईंट-पत्थर का नहीं, तम्बू का। लेकिन होटल के मालिक का व्यवहार अत्यन्त शिष्ट था। आठ आने सेर का दूध और वह भी इस जंगल में पाकर हमें बेहद आश्चर्य हुआ। गुलमर्ग में हमने यह जरूर अनुभव किया कि श्रीनगर तो क्या, बनारस की अपेक्षा खाने-पीने की सामग्री काफी सस्ती

है। पहाड़ पर अगर खाने-पीने की सामग्री शहरों से सस्ती कीमत में मिलती है तो यह अवश्य आश्चर्य की बात है।

सामने एक विस्तृत मैदान है और दूर पथरीली भूमि। इसके अलावा खिलनमर्ग में कुछ भी देखने योग्य नहीं है। मार्ग में अगर पाइन वृक्षों की शोभा देखने में न आये तो यहाँ की निरवता से यात्री का हृदय बुरी तरह घबरा जाय।

यहाँ से हम धीरे-धीरे अफरबात (अपरबल) पर्वत की ओर बढ़े। यह स्थान समुद्रतल से १३५०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। रास्ते में बर्फ के कारण इतनी फिसलन है कि लोग अगर सम्हलकर न चलें तो मुँह के बल गिर पड़ें। इसके आगे की राह और भी बीहड़ है। केवल चट्टानें और वह भी काफी बड़ी-बड़ी। मैं बुरी तरह थक चुका था। खिलनमर्ग तक तो हम टट्टू पर आये थे, परन्तु इधर पैदल मुझसे बिलकुल चला नहीं जा रहा था। पर कभी-कभी नयी जगह देखने का शौक और मित्रों का उत्साह, बूढ़े दिल को भी जवान बना देता है।

चार या साढ़े चार घण्टे बाद हम अलपत्थर झील के पास पहुँचे। यह झील गुलमर्ग से ११ मील दूर तथा समुद्र तल से १४०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। इस झील के चारों तरफ बर्फ ही बर्फ है, जैसे दानाचीनी का जमाया हुआ शिला खण्ड। सिर्फ बीच में नीला पानी है। साँप के देवता अलपत्थर को अत्यन्त पवित्र भूमि माना गया है।

वहाँ से हम जब गुलमर्ग वापस आये तब दिन ढल चुका था और सूर्य की सुनहली किरणें गुलमर्ग के विस्तृत हरे मैदान से अठखेलियाँ कर रही थीं। यह दृश्य देखकर हमें बड़ा आनन्द आया। हमें लगा जैसे हम पृथ्वी की सबसे ऊँची भूमि पर खड़े हैं। यहाँ से आकाश उतना ही दूर है जितनी धरती। लेकिन यह एक हास्यास्पद कल्पना थी।

तीसरे दिन हम फिरोजपुर नाला देखने गये, जो गुलमर्ग से ७-८ मील दूर है। कम से कम इधर का दृश्य खिलनमर्ग की तरह स्यापा लिए हुए नहीं है। कलकल करती हुई नाले की ध्वनि, पंक्षियों का कलरव और छायादार घने वृक्षों ने हमें मोह लिया।

चौथे दिन सुबह उठने पर ज्ञात हुआ कि बनर्जी बाबू को तेज ठण्ड लग गयी है। इस समाचार से हम सभी चिन्तित हो उठे। मैंने इतिहासज्ञ से कहा कि जाकर किसी डाक्टर को बुला लाओ। इस मामले में होटल वाले की मदद ले लेना। इतिहासज्ञ ज्योंहीं चलने को तैयार हुए त्योंही प्रदीप ने कहा—'डाक्टर को बुलाने से अच्छा है, किसी डाण्डीवाले को बुला लो और उन्हें जल्द से जल्द श्रीनगर ले चलो। यहाँ डाक्टर मिलेगा या नहीं, दवा मिलेगी तो कहाँ, कौन जाने। बेकार परेशानी होगी।'

मैंने कहा—'यहाँ दवाखाना है, मैं जानता हूँ।'

फिर भी वे राजी नहीं हुए। विवश होकर हमने डाण्डी वाले को बुलाया। उन्हें उस पर चढ़ाकर रवाना हुए। हम तीनों टट्टू पर थे और बनर्जी बाबू डाण्डी पर। जाते समय हम बड़े उत्साह और उमंग के साथ बढ़ रहे थे और इस समय मनहूसों की तरह चिन्ताओं का बोझ लेकर उतर रहे थे।

टनमार्ग आनेपर हमें बस नहीं मिली, और न डाक्टर की सुविधा। फलस्वरूप तुरन्त टैक्सी ठीक करके हम श्रीनगर रवाना हो गये। संभवतः हम गुलमर्ग में ठहर जाते, पर साथ में कोई सामान न रहने के कारण श्रीनगर लौटना हमारे लिए आवश्यक हो गया।

पूरे पाँच दिन के बाद बनर्जी बाबू के चेहरे पर मुस्कान के साथ-साथ ताजगी दिखाई दी। एक तरह से वे पूर्ण स्वस्थ हो चुके थे। हम चाहते

थे कि दो-चार दिन और ठहर जायँ ताकि वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जायँ, परन्तु वे राजी नहीं हुए।

श्री नगर से प्रस्थान

आखिर एक दिन हम पहलगाँव की ओर रवाना हो गये। बनर्जी साहब जरा शक्की तबीयत के आदमी हैं। उन्होंने अपनी बीमारी के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए कहा—"जब हम लोग गुलमर्ग जा रहे थे तभी मेरी बायीं आँख फड़क रही थी। सोचा, शायद वायु का प्रकोप है। इसके बाद ध्यान आया कि उस दिन शुक्रवार भी था। शुक्रवार को पश्चिम दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिये, यही वजह है कि तुम लोगों को मेरे कारण इतनी परेशानी उठानी पड़ी।"

"आज पहल गाँव के लिए दिशा शूल तो नहीं है?" प्रदीप जी ने मजाक किया।

"नहीं।"

पाम्पुर के पास बस आकर रुक गयी। यहाँ कुछ मुसाफिर उतर पड़े। उन्हें यहाँ से अपरबल और कौंसर नाग जाना था। चूँकि हम पहल गाँव जा रहे थे, इसलिए बस पर बैठे ही रह गये।

पाम्पुर से खलबल होते हुए बस पहल गाँव की सड़क की ओर मुड़ गयी। अब हम सजग होकर बैठ गये। खनबल तक राह परिचित थी। अब हम नयी राह की ओर बढ़ रहे थे।

अनन्त नाग

श्री नगर से ३४ मील दूर आने पर अनन्त नाग के पास आकर हम उतर पड़े। बनर्जी बाबू खाली बस पर पैर फैलाकर आराम करने लगे।

अनन्त नाग एक चौराहा है। यहाँ से एक रास्ता बेरीनाग की ओर, दूसरा कोकरनाग की ओर, तीसरा श्रीनगर और चौथा पहल गाँव की ओर गया है। यहाँ मीठे पानी का एक झरना और कुण्ड है। एक मन्दिर भी है। इसके अलावा यहाँ कुछ भी देखने योग्य नहीं है। मुसलमानों ने इसका नाम इस्लामाबाद रखा है। यहाँ के लकड़ी के खिलौने, स्त्रियों के प्रसाधन की सामग्री तथा काश्मीरी वस्तुएं काफी प्रसिद्ध हैं।

मार्तण्ड मन्दिर

अनन्त नाग से ५ मील आगे बढ़ने पर मट्टन या मार्तण्ड मन्दिर मिलता है। मोटर से उतरते ही पण्डे जोंक की तरह लिपट जाते हैं। आप कहाँ से आ रहे हैं? आप किस जिले के रहनेवाले हैं, आप किस जाति के हैं आदि नाना प्रकार के प्रश्न पूछने लगते हैं। फिर अपना यजमान घोषित करते हैं। एक पण्डे ने मेरे चाचा का नाम बताकर मुझे उनका सुपुत्र घोषित कर दिया। मैंने कहा—"हाँ, आप जिनका नाम ले रहे हैं, वे मेरे चाचा हैं और वे काश्मीर आये थे।"

अन्ततः मुझे मूड़ने के लिए उन्होंने अपना यजमान बना लिया। चाचा के हस्ताक्षर के पास ही मेरा हस्ताक्षर करवाया। एक खूबी इनमें अवश्य है, ये बदरीनाथ, केदारनाथ, गया और काशी के पण्डों की तरह यात्रियों का गला नहीं घोटते। अपने यजमानों पर इनका इतना विश्वास है कि अगर यजमान किसी कारणवश मुसीबत में पड़ जाय तो आर्थिक सहायता करने में भी नहीं हिचकते। पण्डों में यह गुण मार्तण्ड मन्दिर के अलावा कामाख्या देवी के मन्दिर के पण्डों में भी बताया जाता है। वे भी आपका स्वागत अपने लड़के की तरह करेंगे। घर पर हर तरह का आराम देगे। सभी लोग आपकी सेवा करेगें और स्टेशन तक आकर स्वयं

अपने पैसे से टिकट खरीद देगें। इतनी सेवा और विश्वास पाने के बाद अगर इनसे कोई विश्वासघात करे तो उससे बड़ा नीच कौन हो सकता है?

यह मन्दिर सम्राट ललितादित्य मुक्तापीड़ का बनवाया हुआ है। इसके चारों तरफ झील, सरिता पेड़ों का झुरमुट और घनी आबादियाँ हैं। यद्यपि आज का मन्दिर जीर्णावस्था में है, पर उसके ध्वंसावशेषों को देखने पर उसके अतीत का गौरव स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है। मुख्य प्रतिमा-गृह २०० फुट लम्बा और १४२ फुट चौड़ा है। प्रांगण में दोनों तरफ स्तम्भ है। इसके स्तम्भ भारतीय कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं, अगर ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। मन्दिर की मेहराब पर गान्धार शैली का प्रभाव है। यद्यपि इन शैलियों का मैं पारखी नहीं हूँ और न काश्मीर के पूर्व इतिहास से ही मुझे दिलचस्पी है, यह सब मेरे इतिहासज्ञ मित्र की कृपा है जो बराबर मुझे सूचनाएँ देते चले आ रहे हैं। प्राचीन काल में यहाँ पाण्डव आये थे। पता नहीं, उस समय इसका क्या नाम था। लेकिन यह सत्य है कि हिन्दुओं के लिए यह तीर्थ स्थान है।

यहाँ का जलवायु अच्छा होने के कारण अनेक लोग तम्बू गाड़कर यहाँ ठहरे हुए हैं। पास ही मट्टन केनाल की सुन्दरता अपूर्व है।

यहाँ से आगे बढ़ने पर आगे कुछ राह सँकरी मिली। फिर मैदानी इलाका आया। चारों तरफ खेत दिखाई दे रहे थे, जहाँ काश्मीरी स्त्री-पुरुष ढोर चरा रहे थे और खेतों में काम कर रहे थे। कुछ दूर आगे ऐश-मुकाम नामक एक छोटा गाँव मिला। यहाँ पहाड़ी सन्त शेख नूरुद्दीन के शिष्य की भव्य जियारत हैं, जिसमें ऐश साहब की कब्र है। यहाँ अनेक खेमे दिखाई पड़े। इसके बाद हमारी बस पहलगाँव की सीमा में प्रवेश करने लगी।

पहलगाँव

●
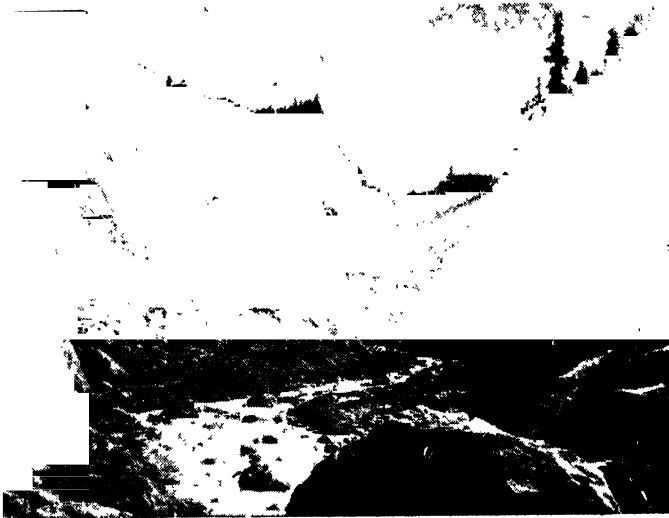
चन्दन बाड़ी मार्ग का एक दृश्य पृ० सं० १०५
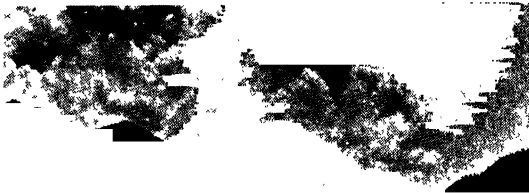
पहलगांव

पृ० सं० १०५

एक बजे के लगभग हमारी बस पहलगाँव में जाकर रुक गयी। अपना सामान उतरवा-कर और रामदास के जिम्मे सौंप कर हम बनर्जी साहब के साथ आगे बढ़ गये। श्रीनगर में ही बनर्जी साहब ने कहा था कि पहलगाँव में होटल में ठहरने से अच्छा है कि खेमे में रहा जाय। इससे दो सुभीता होता है। पहली बात यह कि होटल से कम खर्च होता है, दूसरे प्रकृति का वास्तविक आनन्द मिलता है। हर तरह का सामान आप यहाँ किराये पर पा जायेगें।

कुछ दूर आगे बढ़कर हम एक दूकानदार के पास आये, जो खेमों का ठेकेदार था। उससे बातचीत करने के पश्चात् हम अपने सामान के पास चले आये। मुश्किल से आध घण्टे के पश्चात् हमें सूचना मिली कि हम लोगों का खेमा लिदर नदी के नजदीक ही तैयार कर दिया गया है। कुलियों से सारा सामान उठवाकर हम अपने खेमे में चले आये।

पूछने पर पता चला कि यहाँ केवल खेमा ही नहीं, कम्बल, दरी, चादर, लालटेन, पलंग आदि सभी सामान किराये पर मिल जाते हैं। एक खेमा १६) मासिक से लेकर ३६) मासिक अथवा ६) सप्ताह से लेकर १४) सप्ताह तक किराये पर मिलता है। निम्म तालिका से उनके किराये के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी हो जायगी। चूँकि हम १५ दिन के लिए ठहरने वाले थे, इसलिए सभी सामानों का किराया पन्द्रह दिनों के हिसाब से चुकाया। लेकिन चार्ट में प्रतिदिन और हफ्तेवारी सूचना दी जा रही है।

नाम सामान	मासिक	पाक्षिक	सप्ताह भर का
छोलदारी	४.००	३.००	२.००
तम्बू का स्नान घर	४ ००	३.००	२.००
तम्बू का शौचालय	४.००	३.००	२.००
मध्यम आकार की दरियाँ	२.००	२.००	२.००
लकड़ी का फर्श	.०६ नया पैसा प्रति दिन प्रति फुट		
कुर्सी भोजन-टेबिल	१.२५	१.००	.७५
बेत की आराम कुर्सी	२.००	१.५०	१.००
नेवार की खटिया	.१२ नया पैसा प्रति दिन		

नाम सामान	मासिक	पाक्षिक	सप्ताह भर का
सुतली वाली खटिया	.१२	नया पैसा प्रति दिन	
डबल वेड	.१६	,, ,,	
ड्रेसिंग टेबिल	.१२	,, ,,	
नेवार का पलंग सिंगल	.२५	,, ,,	
,, ,, डबल	.३७	,, ,,	
लिहाफ	.२५	,, ,,	
गद्दा	.१२	,, ,,	
बाल्टी और कनस्तर	.०६	,, ,,	
,,	१.००	०.५०	०.५०
आलमारी	२.००	१.२५	०.७५
कमोड	२.००	१.००	०.७५
बड़ी आलमारी दर्पण सहित	४.००	२.५०	१.५०
लालटेन	०.७५	०.७५	०.५०
टेबिल लैम्प	१.००	०.७५	०.५०
वाथ टब	१.७५	१.००	०.७५

यहाँ के होटलों का किराया श्रीनगर के होटलों की तरह है, पर जो लोग कुछ दिन के लिए यहाँ ठेहरते हैं, वे खेमों में रहना अधिक पसन्द करते हैं। शुद्ध जलवायु, प्रकृति का वास्तविक आनन्द, शिकारी जीवन का अनुभव आदि प्राप्त होता रहता है।

समुद्रतल से ७००० फुट की ऊंचाई पर होने के कारण यहाँ ठण्ड

काफी पड़ती है। यद्यपि गुलमर्ग की सी सर्दी यहाँ नहीं है, पर लिदर नदी का किनारा और पहाड़ी भूमि का असर तो होता ही है। शाम होते-होते सर्दी काफी बढ़ गयी। हम गर्म कपड़े पहनकर भी भीतर सिहरन अनुभव कर रहे थे।

पहल गाँव की सबसे बड़ी विशेषता है, स्थान की बनावट। उत्तर दिशा में केवल पहाड़ ही पहाड़ है, एक ओर लिदर नदी सितार की तरह स्वर करती हुई बह रही है, दूसरी ओर खेमों की नगरी है, तीसरी ओर नगर है। अगर पहल गाँव की बनावट पर गौर करें तो ऐसा लगता है जैसे चाय की एक बड़ी प्याली है। कौन जाने कभी यहाँ बहुत बड़ी झील रही हो, जैसा कि इतिहासज्ञ बता चुके हैं। अगर आप खेमे के बाहर आकर चारों तरफ देखें तो ऐसा लगेगा मानों चारों तरफ से पहाड़ों ने आपको कैद कर लिया है। एक ओर चिनार के वृक्ष सरकस की गैलरी में बैठे दर्शकों की तरह एक के बाद एक करके ऊँचाई पर चढ़ते गये हैं। दूसरी ओर पहाड़ों की चोटी पर जमी हुई बरफ ऐसी लगती है, मानों नगराज मलमल का साफा बाँधे खड़े हैं या नटराज सफेद सर्प गले में डाले मुस्करा रहे हैं।

दिन की रोशनी में पहल गाँव का रूप जितना मोहक लगता है, चाँदनी रात में उतना ही सुहावना। सुबह के रंग में अगर उल्लास है तो शाम के रंग में मनोहरता है, यद्यपि गुलमर्ग की तुलना में पहल गाँव कुछ भी नहीं है। गुलमर्ग में जाकर जहाँ इन्सान के दिल में अपनी महानता का भान होता है, वहीं पहल गाँव के प्याले वाली भूमि में अपनी क्षुद्रता का भास होता है।

दो तीन रात तो भय और अपरिचित स्थान होने के कारण सो नहीं सका। जो व्यक्ति हमेशा ईंटों की चहारदीवारी में रहता आया हो, उसे अगर खेमे में रहना पड़े तो क्यों न वह भयभीत हो। एक ओर लिदर नदी का कलकल, जिसे हर यात्री ने मधुर संगीत और न जाने क्या-क्या उपमा दे रखी है, परेशान करता रहा, दूसरे कभी-कभी हृत्पिण्ड को कँपा-कर पूरे मकान को हिला देने वाली हवा की लड़ाई से नींद उचट जाती थी। चारों तरफ मौत-सा सन्नाटा था। अगर इस सन्नाटे को कोई तोड़ रहा था तो सिर्फ पेड़ों की सरसराहट और लिदर नदी का संगीत। फिर भी रात के सूने पन में अक्सर जब खेमे के बाहर निकल कर बाहर झाँकता था, तब अपने इस सौभाग्य पर ईर्ष्या होती थी। लगता था, जैसे मैं कोई सम्राट हूँ, और अपने राज्य में आखेट खेलने के लिए आया हूँ। आस-पास के खेमों में मेरे सैनिक-सलाहकार और सेवक ठहरे हुए हैं। सम्भव है यह अद्भुत कल्पना आपके मनोरंजन की खुराक बन जाय, पर बात सही है। कभी-कभी इच्छा होती थी कि क्यों न कुछ दूर टहल आऊँ, पर अकेले जाने की हिम्मत नहीं होती थी। इधर मेरे मित्रगण घोड़ा बेचकर खुर्राटे भर रहे थे। ऐसे स्थानों पर अकेले या पुरुष साथी के साथ आना व्यर्थ है। प्रेयसी न सही, पत्नी भी पास रहे तो उसके हाथ में हाथ डाले चाँदनी रात में इस मैदान में टहलने में जो आनन्द मिल सकता है, वह न तो कनाट प्लेस में मिलेगा और न इडेन गार्डेन में। मलाबार हिल या चौपाटी तो थर्ड क्लास के स्थान हैं। वहाँ घूमने वाले कम, घूरने वाले अधिक रहते हैं।

पाँच या छः दिन के बाद मैंने बनर्जी बाबू से कहा—'अमरनाथ दर्शन करने कब जाइयेगा।'

'भई, मैं अमरनाथ नहीं जाऊँगा। उधर तुम लोगों का साथ इस लिए दिया कि तुम्हें साथी की कमी महसूस होती। दर असल मैं तो पहल गाँव में विश्राम करने आया हूँ। तुम लोग चाहो तो अमरनाथ चले जाओ। मैं टट्टू आदि का प्रबन्ध कर दूँगा। लेकिन यात्रियों के दल के साथ जाना पड़ेगा। यह तो पता लगाकर बता सकता हूँ कि यात्रियों का दल कब यहाँ से रवाना हो रहा है।"

बनर्जी बाबू की इस बात पर मुझे दुःख हुआ, पर कर भी क्या सकता था। प्रदीप जी ने भी दिलचस्पी नहीं दिखाई। बोले—'मुफ्त में परेशानी मोल लेने से फायदा। गोली मारो अमरनाथ को। पहाड़ पर से कहीं फिसलकर गिर गये तो बनारस में पुतला जलाया जायगा।'

पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि अगले रविवार को यात्रियों का दल यहाँ से रवाना होगा। अभी ३-४ दिन की देर है। पहल गाँव भले ही इन बूढ़ों को अच्छा लगे पर मेरा मन ऊब उठा। मैं चलते रहने को ही जीवन मानता हूँ। पहल गाँव के बाजार का हर कोना, नदी की हर लहरों को देखने के बाद अब एक काम यह बाकी रह गया था कि चिनार के उन वृक्षों की गिनती कर डालूं जो पहाड़ के किनारे-किनारे बड़ी दूर तक फैले हुए हैं।

अचानक इतिहासज्ञ ने कहा—'यहाँ तीन दिन बैठे रहने से अच्छा है, चलिये वेरोनाग देख आयें।'

प्रस्ताव कोई बुरा नहीं था। मोटर के बारे में पता लगाकर हम चुप चाप खेमे में आकर कपड़े पहनने लगे। यह दृश्य देखकर प्रदीप जी बोले—"नहीं मानोगे ! जीवित स्वर्ग जाना ही चाहते हो। कम से कम एक

कागज में यह लिखकर जाओ कि जान बूझकर खुदकशी करने जा रहे हो। इससे हम जवाबदेही से बच जायँगे।"

'अमरनाथ नहीं, हम वेरीनाग जा रहे हैं।' इतिहासज्ञ ने जवाब दिया।

'यह स्थान कहाँ है ?'

'हमारे साथ चलिये तो पता चल जायगा।'

बनर्जी बाबू थे नहीं, अगर वे रहते तो न जाने क्या कहते। हम चुपचाप मोटर कार से अनन्त नाग चले आये। वहाँ से दक्षिण दिशा की ओर मुड़कर बेरी नाग चले गये।

बेरी नाग

बेरीनाग अनन्तनाग से १६ मील दूर है। इस स्थान की ख्याति सिर्फ इसलिए नहीं है कि वितस्ता का उद्‌गम स्थल है, बल्कि इसलिए भी है कि इस स्थान का निर्माण जहाँगीर ने करवाया था। कहा तो यहाँ तक जाता है कि जहाँगीर की यह दिली ख्वाहिश थी कि उसकी कब्र यहीं बने, पर क्या इन्सान की सारी हविशें पूरी हो पाती हैं ?

चश्मे को काश्मीरी भाषा में नाग कहा जाता है। काश्मीर के उन सभी अंचलों के नाम के साथ नाग शब्द जुड़ा हुआ है, जहाँ से कोई नदी निकली हो या कोई चश्मा हो। कोकर नाग, कौंसर नाग, वेरी नाग, अनन्त नाग आदि इसके प्रमाण हैं।

वेरी नाग पिकनिक के लिए निहायत बेहतरीन जगह है। ऐसे स्थान पर अगर गंवार आदमी भी रह जाय तो कवि बन जाय। पास ही एक

डाक बँगला है। इस बँगले में यात्रियों को हर प्रकार की सुविधा दी जाती है। प्रस्तुत बँगला सरकारी है।

विशाल हरे रंग के चश्में से झेलम नदी निकल कर टेढ़े-मेढ़े रास्ते से श्री नगर के आगे बुलर झील तक चली गयी है। इसमें छोटी-बड़ी रंग-बिरंगी मछलियाँ निर्भय होकर तैरती रहती हैं। सूर्य की किरणों में ये मछलियाँ इतनी भली मालूम पड़ीं, मानों छोटे-छोटे इन्द्र धनुष इस सोते में अटखेलियाँ कर रहे हैं। इस सोते को चारों तरफ से घेरकर कुण्ड का रूप दे दिया गया है। कुण्ड के पास ही ऊँचा पर्वत है, उसपर चिनार के अनेक वृक्ष हवा में झूमते नजर आये। कुण्ड के नीचे भी चिनार के अनेक वृक्ष हैं। सच तो यह है—काश्मीर चिनार वृक्षों का प्रदेश है। कुण्ड के इर्द गिर्द चहार-दीवारी है। इनमें एक चहार-दीवारी पर फारसी में लिखा है—

हैदर बहुक्मे शाहजहाँ बादशाहे दहर,
शुक्रे खुदा कि सख्तचिकन आबशारोजू।
ईं जूए दादा अस्त जे जूए बहिश्त याद,
जीं आबशार याफ्ता कश्मीर आबरू।
तारीखे जूए आब बगुफ्ता सरोशे गैब,
अज चश्मे वहिश्त बरूँ आमदास्तजू।

इसका अर्थ इतिहासज्ञ ने बताया कि किसी हैदर नामक इंजीनियर ने सन १०३६ हिजरी में इसे बादशाह शाहजहाँ की आज्ञा से बनाया था

दूसरा लेख इस प्रकार है—

बादशाहे बेज़त किशबर शहनशाहे अदालत गुस्तर अबुल-

अमरनाथ
का
गुफा द्वार
पृ० सं० १२५

अमरनाथ की
हिम मूर्ति
पृ० सं० १२५
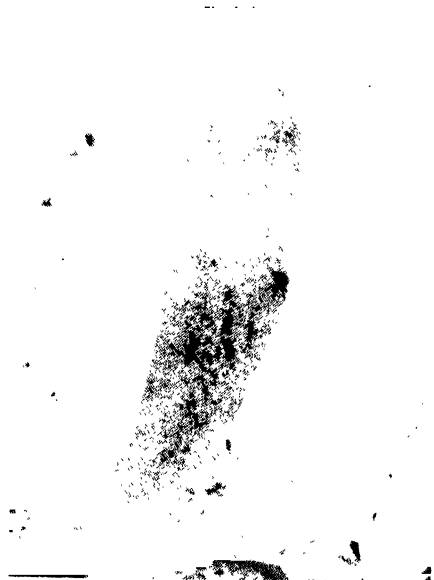
मुजफ्फर नूरुद्दीन जहाँगीर बादशाह इब्न अकबर बादशाह ग़ाजी बतारीख सिह १५ जुलूस दरीं सरचश्मए फ़ैज आई नजूल अजलाल फरमूदँद। वई इमारह बहुक्मे आँ हजरत सूरते एह तमाम याफ्त।

इससे स्पष्ट है कि इस चश्मे को जहाँगीर ने बनवाया था। तुजके जहाँगिरी में लिखा है कि वेरी नाग के पास का बाग मुर्दों में रूह डाल देता है। जहाँगीर को यह स्थान बहुत प्रिय था। यहीं बैठकर वह जाम पीता था।

यहाँ से हम पुनः वापस आये और कोकरनाग की ओर रवाना हो गये। एक बार इच्छा हुई कि कौंसर नाग भी चल चलें, पर ड्राइवर ने मार्ग का जो वर्णन किया, उसे सुनकर हम निरुत्तर रह गये।

यहां एक बात स्पष्ट कर दूं कि हमारी यह यात्रा बस के द्वारा नहीं, मोटर कार के द्वारा हो रही थी और दो ही यात्री यात्रा कर रहे थे।

अच्छबल

अनन्त नाग से यह स्थान ५-६ मील दूर है। चूने के पहाड़ के समीप, चिनार वृक्षों का यहाँ एक बाग है। कृत्रिम प्रपातों तथा फौव्वारों से परिपूर्ण यह बाग नूरजहाँ का आरामगाह था। यहाँ सरकारी रेस्ट हाउस है, पोस्ट आफिस है और छोटा-सा एक बाजार है। इधर के इलाके में एक खूबी यह देखने में आयी कि लोग अधिकतर खेमे में निवास करते हैं। कहना न होगा कि अच्छबल में भी दर्जनों खेमे लगे हुए थे। शायद इधर की जलवायु, श्रीनगर के उधर के इलाके से अच्छी है, तभी तो लोग यहाँ रह रहे हैं।

कोकर नाग

अच्छबल से ८ मील और आगे आने पर, कोकर नाग नामक प्रसिद्ध चश्मा मिला। यहाँ भी गुलमर्ग की तरह रंग-विरंगे फूलों की बहार देखने में आयी। बेरीनाग में कुण्ड है, पर यहाँ दूर पहाड़ से एक झरना बहता हुआ आता दिखाई दिया। अच्छबल और बेरीनाग से यह स्थान अधिक सुनसान था। झरने के दोनों किनारे पर चिनार वृक्षों के अलावा अन्य वृक्षों की घनी छाया थी। चौड़ी नदी बन जाने के कारण शान्त थी, नहीं तो यह भी लिदर की तरह तानपूरे की संगीत सुनाती।

अमरनाथ दर्शन

रविवार के दिन सुबह प्रदीपजी, मैं और इतिहासज्ञ अमरनाथ-दर्शन के लिए रवाना हुए। रामदास की बड़ी इच्छा थी कि वह भी हमारे साथ चले, परन्तु बनर्जी बाबू ने उसे आने नहीं दिया। रामदास के चले आने पर उन्हें अवश्य तकलीफ होती। कम से कम उसके जिम्मे खेमे का भार छोड़कर बेचारे इधर-उधर टहल लेते हैं।

शहर के बाहर मैदान में सरकारी कार्यालय के सामने काफी भीड़ इकट्ठी थी। बनर्जी बाबू ने बता दिया था कि सवारी के लिए तीन और सामान ढोने के लिए दो घोड़े ठीक कर लेना। रास्ते में कोई भी अपने खेमे में रहने देना पसन्द नहीं करेगा। खाना तो तुम लोग वहाँ बना चुके और जो मिलेगा भी, वह शायद ही पसन्द आये। इसलिए बिस्कुट के कई डिब्बे साथ में रख लो, काम आयेगें। चूँकि बनर्जी बाबू भुक्त-भोगी थे, इसलिए हमने उनके कथन का अक्षरशः पालन किया। घोड़े हम शाम को ही ठीक कर चुके थे। प्रति घोड़ा १७.५० और ८) के हिसाब से २४) में तीन मजदूर से बात पक्की हो गयी थी। मतलब यह कि छिहत्तर रुपये पचास नये पैसे में आना-जाना तय हो गया था। फिर भी यहाँ के टट्टू-वाले कभी-कभी काफी परेशान करते हैं। जब भीड़ अधिक देखते हैं या यात्री की गरज को देखते हैं तब ऐन मौके पर कुछ न कुछ गड़बड़ कर ही देते हैं। हमारे एक सहयोगी का घोड़ा दूसरे महोदय जबर्दस्ती इसलिए ले गये कि उन्होंने इस घोड़े के लिए कल उसे बयाना दे रखा था।

किसी तरह ११ बजे के लगभग हमारा काफिला राम-राम करते रवाना हुआ। बच्चे-बूढ़े, जवान, साधू, गृहस्थ आदि सभी प्रकार के लोग हमारे दल में थे। अभ्यस्त लोग पैदल चल रहे थे और नाजुक लोग डाण्डी पर चल रहे थे। लोगों में इधर-उधर की बात-चीत चल रही थी। यात्रा में भी कितना उत्साह, कितना आनन्द और कितनी भावनाएँ होती हैं—यह तीर्थस्थानों की यात्रा में देखने में आता है। एक ओर गगन चुम्बी पहाड़ थे, दूसरी ओर लिदर नदी।

कुछ दूर आगे आने पर हमारा काफिला रुक गया। पता चला

कि यहाँ हमारे घोड़े अपने लिए राशन लेगें। गाँव साधारण ही है, पर आज गाँव का रूप निकट से देखने के कारण, उनका वास्तविक रूप देख सका। एक ओर यात्रियों के दल पुण्य लूटने या तफरीह के लिए व्यर्थ ही इतना पैसा बरबाद कर रहे हैं और दूसरी ओर ये गरीब काश्मीरी रोटियों के लिए जी तोड़ परिश्रम करके भी खुशहाल नहीं है। खुशहाली से मेरा मतलब उन्हें वह आराम नहीं मिलता जो हर इन्सान का जन्मजात अधिकार होना चाहिए।

आगे संकरी राह मिली, जो हमें धीरे-धीरे ऊँचाई की ओर ले चल रही थी और नीचे विस्तृत मैदान था। उस मैदान में स्त्री-पुरुष अपना-अपना काम कर रहे थे। जब साधुओं के कण्ठ से समवेत स्वर से 'जय, बाबा अमरनाथ की जय' की ध्वनि उच्चारित होती थी, तब कौतूहल पूर्ण अनेक आँखें सहसा हमारी ओर उठ जातीं। पता नहीं, उन आँखों में दर्द था, या ईर्ष्या। यह ठीक है कि मैं अमरनाथ दर्शन करने जा रहा था, पर भक्ति या श्रद्धावश नहीं, बल्कि नयी जगह, नया मार्ग और नये अनुभव के लिए मेरी यात्रा थी, भले ही इन औरतों और बूढ़ों के दिल में पुण्य लूटने का विचार हो, परन्तु सत्य यह है कि इन्सान अपनी व्यक्तिगत तृप्ति के लिए ही यात्रा करता है।

एक ओर धूप लग रही थी, दूसरी ओर कलेजे को हिला देने वाली सर्द हवा चल रही थी। फिर भी लोगों में उत्साह था, आगे बढ़ने का। आगे एक घाटी पर जब 'बाबा अमरनाथ की जय' की ध्वनि हुई तब समस्त पहाड़ी कन्दराएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। लगा जैसे कहीं ग्लेशियर फट गया हो। रास्ते में चढ़ाई भी है, उतराई भी। ऊबड़ खाबड़ रास्ते में ठोकरों

को बचाते हुए लोग चल रहे थे और डाण्डी में बैठे लोग केवल दूर पहाड़ी दृश्यों को देखने में मस्त थे। घोड़ों पर सवार हुए लोगों की दशा सबसे खराब थी। एक बार वे नीचे झुकते, फिर पीछे झुकते आगे बढ़ रहे थे। पहाड़ी दृश्यों का आनन्द लेने की जगह वे नीचे पहाड़ी रास्ते को भेद-भरी दृष्टि से देखते हुए चल रहे थे, ताकि उनका वाहन अपने साथ उन्हें स्वर्गपुरी न ले जाय।

चन्दन वाड़ी

सात मील सफर करने के बाद चन्दन वाड़ी नामक पहला पड़ाव आया। यह स्थान समुद्र तल से ९५०० फुट की ऊँचाई पर बसा है। चारों तरफ घने वृक्षों के झुण्ड हैं। जंगली फूलों से चन्दन वाड़ी अजीब श्रृंगार किये हुए हमारा स्वागत कर रही थी। पास ही एक नदी हर-हर करती हुई बह रही थी। पूछने पर पता चला कि इस नदी का नाम है—नील गंगा। मनुष्य को गंगा नाम से कितना प्यार है! भागीरथी गंगा, सिन्ध गंगा, राम गंगा और यह है नील गंगा। शायद यह भी शंकर की जटा से निकली हैं। अमरनाथ भी तो शंकर का अमर नाम है

यहाँ सभी लोग उतरे। सरदार जी के होटल में प्रेम से भोजन किया गया। भोजन के पश्चात् बनर्जी बाबू की सीख व्यर्थ सी मालूम पड़ी, कारण भोजन बहुत अच्छा था। संभव है, आगे खराब मिले या न भी मिले, लेकिन यहाँ भोजन करने के बाद हम तृप्त हो गये।

यहाँ पर यात्रियों के दो दल हो गये। कुछ लोग आज की रात यहीं बिताने को तैयार हुए तो कुछ लोग आगे बढ़ने के लिए। अभी समय

काफी था। यहाँ टिकने वालों का कहना था कि आगे शेषनाग पड़ाव है जो यहाँ से ८ मील है और आगे खड़ी चढ़ाई है। यह चढ़ाई बराबर पञ्च-तरनी तक चली गयी है।

लेकिन हम रुके नहीं। केवल इसलिए रुक जाना कि आगे मुसीबत है, इसे मैं कायरता मानता हूँ। अपने वाहन के स्वामी से जब मैंने उसकी राय माँगी तो उसने मुझे काफी उत्साहित किया। फलस्वरूप हम आगे बढ़ गये।

सच तो यह है कि अमरनाथ की असली यात्रा चन्दनवाड़ी से ही शुरू होती है। चन्दनवाड़ी तक तो लोग पहलगाँव से तफरीह के लिए चले आते हैं और जो लोग कुछ अधिक साहसी होते हैं, वे शेषनाग तक चले आते हैं। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते गये त्यों-त्यों रास्ता दुर्गम होता गया। सच-मुच इधर इतनी कठिनाई बढ़ती गयी कि चन्दनवाड़ी से आगे बढ़ने की जिद् पर स्वयं ही चिढ़-सी हो गयी। लेकिन अब पीछे लौटने का रास्ता बन्द कर आया था। सहस्रों कण्ठों से अगर 'बाबा अमरनाथ की जय' ध्वनि न सुनाई पड़ती तो शायद दम घुँट जाता।

काश्मीर की हर चीज की प्रशंसा करते लोग थकते नहीं, पर बहुत कम लोग इन टट्टुओं की प्रशंसा करते हैं। भगवान का सबसे चतुर प्राणी मनुष्य इन कगारों से गुजरते समय जहाँ भय से आँख मूँद ले रहा है, वहीं ये टट्टू धीरे-धीरे कभी सरपट चाल से निर्भय होकर आगे बढ़ते जा रहे हैं। वे सिर्फ अपने शरीर का बोझ लेकर नहीं चल रहे हैं, बल्कि पीठ पर इन्सान और इन्सान के आराम का बोझ लेकर चल रहे हैं। उन पहाड़ी कुलियों के साहस पर कम आश्चर्य नहीं होता जो रिक्शे-

बालों की तरह, मनुष्य होकर मनुष्य को कन्धे पर लादकर चल रहे हैं। यहाँ इन्सान की कीमत पैसा है। अगर पैसा पास में हो तो इन्सान को गुलाम बनाया जा सकता है, इन्द्र का इन्द्रासन खरीदा जा सकता है, संसार के समस्त सुखों का आनन्द लिया जा सकता है।

दो मील चीड़ और बलोत के घने वृक्षों का जंगल पार करने के बाद पिस्सु की घाटी की खड़ी चढ़ाई पार करते समय मेरी सारी हिम्मत हवा हो गयी। परन्तु इज्जत का सवाल था, और अमरनाथ देखने का प्रलोभन था, इसलिये चढ़ने की हिम्मत बाँधनी ही पड़ी। बाबा अमरनाथ की जयध्वनि जो अब तक पहाड़ों को गुञ्जित कर रही थी, मन्द पड़ गयी थी। मन ही मन बाबा भोलेनाथ का स्मरण करने लगा।

पिस्सु की घाटी पार करते ही जोजपाल नामक वह पहाड़ी इलाका आता है, जिसे देखकर पीछे छोड़ आयी सारी मुसीबतें भूल जाती हैं। आगे सुनासर नामक झील और उसके आसपास खिले हुए फूलों को देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। यहाँ चिनार की कौन कहे देवदारू की भी गन्ध नहीं थी।

गुलमुहम्मद (घोड़ेवाला) ने कहा—"अब आज यहीं खेमा डाल दें, बाबू। शेषनाग की चढ़ाई बहुत खड़ी चढ़ाई है।"

गुलमुहम्मद की राय सुनने के पहले ही इस मैदान में डेरा जमाने की इच्छा मन में उत्पन्न हो गयी थी, कारण इतनी ऊँचाई पर ऐसा मनोरम दृश्य हो सकता है, हमें इसकी कल्पना तक नहीं थी।

रात कैसी गुजरी, इसका वर्णन अगर करूँ तो कई पृष्ठ रँगने पड़ेंगें। आश्चर्य तो यह देखकर हुआ कि बाबा लोगों ने कैसे रात बितायी। लेकिन

कौन उनसे यह सवाल पूछे। अगर उनसे यह सवाल करता तो वे दार्श-निकों की तरह बदहजमी वाला लेक्चर सुनाने लगते।

दूसरे दिन फिर हमारी यात्रा शुरू हुई। सारे बदन में ठण्ड के कारण दर्द था। माथा कुछ भारी-भारी सा लग रहा था। इतिहासज्ञ के गले में गिल्टियाँ उभर आयी थीं। बेचारे गुलबन्द लपेटे थे। एक बार पुनः यात्रियों के दल, बाबा अमरनाथ की जय ध्वनि कर आगे बढ़ चले। आगे पुनः चढ़ाई का मुकाबला करना पड़ा और इस चढ़ाई में सभी लोग त्राहिमाम कह उठे, पर ज्योंही आगे उतराई नजर आयी त्योंही पीछे आने वाले यात्रियों के हृदय में आशा का नूतन संचार हो गया।

सामने शेषनाग के पानी में ग्लेशियर तैर रहे थे। दूसरी ओर लिदर नदी भागती हुई नजर आयी। कुछ लोग शेषनाग नदी कहते हैं, पर गुल मुहम्मद ने बताया कि यह लिदर नदी है। खैर, चाहे जो नदी हो, यहाँ का दृश्य देखकर मन प्रफुल्लित हो उठा। १२००० फुट की ऊँचाई पर स्थित इस झील को देखकर प्रकृति की कारसाजी पर कौन नहीं दाँतो तले उँगली दबायेगा? आज इतनी ऊँचाई पर आकर शेषनाग झील को देखकर मेरा मस्तक श्रद्धा से झुक गया। अमरनाथ की यात्रा में जो नीरसता अनुभव कर रहा था, यहाँ आने पर वह सारी नीरसता समाप्त ही नहीं हुई, बल्कि इच्छा हुई कि यहीं कहीं ठहर जायँ, पर मेरे इस पागलपन का कोई साथ देने को तैयार नहीं होता।

शेषनाग की घाटी पार कर चुकने के बाद एक दूसरी घाटी में हमने प्रवेश किया। इससे कुछ आगे बढ़ने पर सिन्ध का नाला दिखाई दिया। गंगोत्तरी में गंगा का जो रूप है, वही यहाँ सिन्ध का है।

पंचतरणी

पंचतरणी पहुँचते-पहुँचते हमारी हालत इतनी खस्ता हो गयी कि खेमा गाड़ना भी एक मुसीबत लगी। किसी सूरत से खेमा लग गया खेमे के भीतर जाकर कुछ बिस्कुट निकाल कर खाया और फिर ऐसा सोया कि दूसरे दिन काफी यात्रियों के चले जाने के बाद उठा।

थोड़ी देर बाद उठा और अपनी इस कमजोरी को दूर करने के लिए कसकर तेल मालिश की। इसके बाद पंचतरणी की ओर नहाने चला गया। यहाँ सिर्फ मैं ही नहीं, अनेक यात्री चुपचाप नहा रहे थे। हम अभी नहा रहे थे कि अमरनाथ दर्शन कर वापस लौटने वालों का काफिला आया। 'बाबा अमरनाथ की जय' ध्वनि से एक बार पंचतरणी का कण-कण मुखरित हो उठा।

स्नान करने के पश्चात् हम पुनः खेमा उखाड़ कर आगे बढ़ चले। अब क्रमशः लौटने वाले यात्रियों से मुलाकात हो जाती थी। हमारे साथी कितना आगे बढ़ गये हैं, उनकी ज़बानी पता चल जाता था। यहाँ से पुनः एक बार चढ़ाई शुरू हुई जो काफी दूर तक चली गयी है। हर पड़ाव के बाद चढ़ाई मिलते रहने के कारण एक बात स्पष्ट हो गयी कि पड़ाव जान बूझकर ही नीचे रखे गये हैं। पंचतरणी में भी रहने का स्थान था और ज़ोजबल में भी।

फिर उतराई आयी और इस उतराई में एक-दो नहीं, पाँच नदियों को पार करना पड़ता है। इसे पार करते ही हम अमरनाथ के इलाके में प्रवेश करते हैं।

दूर-बहुत दूर से यात्रियों के कण्ठ से समवेत स्वर में जय ध्वनि हवा में तैरती हुई हमारे इन्द्रियों में चंचलता उत्पन्न करने लगी ।

अमरनाथ

सामने अमरनाथ की गुफा दिखाई दी । गुफा की विशालता देखकर एक बार पुनः इतिहासज्ञ की बात याद आ गयी—लटकते हुए पहाड़ तुषारयुग के चिह्न हैं । गुफा देखते ही सभी सवार यात्री घोड़े से उतर पड़े और पागलों की तरह गुफा की ओर बढ़ चले । कुछ लोग बाहर का दृश्य देखने में दत्तचित्त हो गये ।

गुफा के मुहाने से भीतर कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक चबूतरा मिला जिसपर शिवलिंग बना है । जंगले के बाहर अंग्रेजी में लिखा है—

WELCOME TO THE CAVE OF AMARNATH

भगवान अमरनाथ को भी अंग्रेजी कितनी प्रिय है, इससे स्पष्ट हो जाता है । व्यर्थ ही लोग 'हिन्दी राष्ट्र भाषा हो' चिल्लाते हैं । भीतर यात्रियों की अपार भीड़ थी । चारों तरफ कोलाहल था, जैसे हम बनारस के केदार मन्दिर में हैं । मेरा रोम-रोम आनन्द से, प्रेम से और भक्ति से बिह्वल हो उठा । संभव है—बाबा विश्वाथ की नगरी का निवासी होने के कारण यह भावना मेरे मन में उत्पन्न हो गयी हो, पर सत्य को छिपाने का पाप नहीं कर सकता ।

सहसा यात्रियों में भगदड़ मच गयी । गौर से देखने पर ज्ञात हुआ कि लोग उस कबूतर के जोड़े को देख रहे हैं जो यहाँ न जाने कितने युगों से रहता है । इस जोड़े को शिव पार्वती का जोड़ा कहा जाता है । मानव

हृदय हमेशा से चमत्कार पसन्द करता आया है और यह है, उसका एक उदाहरण।

गुफा के अन्दर विशाल पहाड़ है। कुछ लोग कहते हैं, ऊपर रामकुण्ड है जहाँ से नीचे पानी टपकता है। यात्री उसे चरणामृत समझकर पान करते हैं। भीतर अन्तिम छोर पर एक शिव प्रतिमा है। कहा जाता है कि शुक्ल पक्ष में यह बढ़ती रहती है और श्रावणी पूर्णिमा के दिन पूर्ण रूप से बन जाती है। शिव लिंग के समीप ही १० फुट नीचे पार्वती की वर्फ की मूर्ति और १० फुट ऊपर गणेश की मूर्ति बनती है, अर्थात् बाबा अमरनाथ पूरी गृहस्थी के साथ यहाँ रहते हैं। पूर्णिमा के दिन पूर्ण होते हैं तो अमावस के दिन गायब हो जाते हैं। यही एक ऐसा आकर्षण है जिसके कारण यात्रियों के हृदय में कौतूहल या श्रद्धा उत्पन्न होती है।

यात्रियों का दल अपने साथ नारियल, केला और बहुत से फल लाया था। लोग यह सब चढ़ा रहे थे, साष्टांग प्रणाम कर रहे थे और मैं एक टक इस रहस्य को समझने का प्रयत्न कर रहा था। क्या फिर जीवन में यहाँ दुबारा आने का मौका मिलेगा। जाने क्यों मेरा पाषाण हृदय इतना द्रवित हो उठा कि बरबस आँखें मुँद गयी और बड़े जोर से बोल उठा— 'बाबा अमरनाथ की जय।' सारी गुफा गूँज उठी। श्रद्धालुओं की विस्मय भरी आँखें मेरी ओर अवाक दृष्टि से देखती रहीं। फिर आगे बढ़कर श्रद्धा के फूल और चाँदी के रुपये के अभाव में पाँच रुपये का नोट अमरनाथ के चरणों में रख दिया। फिर भी आत्मा सन्तुष्ट नहीं हुई। हृदय प्रसन्नता अनुभव नहीं कर रहा था। लगता था जैसे कुछ छूट गया है। कुछ भूल कर रहा हूँ। और तभी मेरे अनजाने हृदय से निकल पड़ा—

हर हर महादेव शम्भो, काशी विश्वनाथ गंगे।

इस अपरिचित वाणी को सुनते ही यात्रियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी और सभी पुनः समवेत स्वर में इसे दुहराने लगे। तब ऐसा लगा मेरा अमरनाथ दर्शन सार्थक हुआ।

× × ×

पहलगाँव के खेमे में जब जीता-जागता वापस आया तो रामदास मेरे चरणों पर लोट गया और लगा मेरे पैर को धोकर पोछने। उस पगले के मन में बड़ी साध थी पुण्य लूटने की, जिसे लूट नहीं सका। अपने युग-युग के विश्वास को साकार करने के लिए मेरे पैर धोकर मुझसे आधा पुण्य छीन ले रहा था।

बनर्जी साहब उस समय लिदर के उस पार किसी होटल में खाना खाने गये हुए थे। आज का पहल गाँव उतना नीरस और बुरा नहीं लग रहा था जितना इसके पूर्व लगा था। आज तो लिदर के बहाव में भी संगीत की ध्वनि सुनाई दे रही थी।